मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

मूली उगाकर कम समय में अधिक लाभ कमायें

***सुनील कुमार मौर्य, कुलवीर सिंह यादव, आशीष कुमार मौर्य एवं यादव राम पी**

उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ0प्र0)

Corresponding author: smauryanduat@gmail.com

मूलवर्गीय सब्जियों में मूली का प्रमुख स्थान है इसकी खेती संपूर्ण भारत में की जाती है। इसे खेतो में, गृह वाटिका में या मिश्रित फसल के रूप में उगाया जा सकता है, यह एक तीव्र गति से बढ़ने वाली सब्जी है जिसे बोने के ३ – ४ सप्ताह बाद ही उपयोग किया जा सकता है। मूली की ऐसी किस्में भी उपलब्ध है जिन्हे पूरे साल उगाकर अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इसकी जड़ो का उपयोग सलाद के रूप में, पकाकर खाने एवं अचार आदि के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त पत्तियों का भी उपयोग सलाद के रूप में या भुजिया बनाकर किया जाता है।

पोषक तत्त्व

स्वास्थ्य की दृष्टि से मूली को मानव भोजन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है यह एक ठंडी तासीर वाली सब्जी है, जो कब्ज को दूर करती है और भूख को बढाती है। मूली विभिन्न मिनरल जैसे कैल्शियम, पोटैशियम और विटामिन C का अच्छा स्त्रोत है। इसमें मुख्यतः ग्लूकोज शुगर पाया जाता है, पत्तियों का ऊपरी सिरा विटामिन A, B, C और कैल्शियम तथा आयरन का अच्छा स्त्रोत है

जलवायु

मूली को सभी मौसम में उगाया जा सकता है। इसकी यूरोपियन किस्मों को कम तापमान, जबकि एशियाई किस्मों को अधिक तापमान की आवश्यकता होती है। मूली की विभिन्न किस्मों को भिन्न तापक्रम की आवश्यकता होती है फिर भी जड़ो के उचित विकास हेतु औसतन १० – १५ डिग्री सेल्सियस तापक्रम की आवश्यकता होती है। अधिक तापक्रम वाले मौसम में जड़े कठोर और अत्यधिक चरपरी हो जाती है जो खाने योग्य नहीं होती हैं।

भूमि

मूली को विभिन्न प्रकार की मृदाओं में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है परन्तु अधिक उपज हेतु उचित जल निकास वाली जैव पदार्थ युक्त बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम मानी गयी है। अगेती फसल के लिए बलुई मृदा अच्छी मानी जाती है। यह अम्लीय भूमि के प्रति सहनशील है इसको ६.८ – ५.५ पी० एच0 तक सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। मूली की जड़ो के उचित विकास के लिए भूमि कंकड़ पत्थर रहित होनी चाहिए तथा भूमि में ढेले नहीं रहने चाहिए क्योंकि ऐसी स्थिति में जड़े छोटी रह जाती हैं और उसमे द्वितीयक जड़े निकल आती हैं जिन्हे फोर्किंग कहते हैं जिससे इसकी उपज व गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

किस्में

एशियाटिक किस्में	यूरोपियन किस्में
पूसा चेतकी	स्कारलेट ग्लोब
पूसा देसी	स्कारलेट लॉन्ग
पूसा रेशमी	फ्रेंच ब्रेकफास्ट
पंजाब अगेती	रैपिड रेड वाइट टिप्पड
पंजाब सफेद	पूसा हिमानी
कल्याणपुर वाइट	जापानीज वाइट
चाइनीज पिंक	
अर्का निशांत	

खाद एवं उर्वरक

यह एक शीघ्र बढ़ने वाली फसल है अतः इसमें उचित मात्रा में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग अति आवश्यक है, खाद एवं उर्वरक का प्रयोग सदैव मृदा जाँच के उपरांत ही करनी चाहिए। यदि किसी कारणवश जाँच नहीं हो पाती है तो औसतन २५ टन गोबर की खाद, ८०–१०० किग्रा० नाइट्रोजन, ४०–६० किग्रा० फॉस्फोरस तथा ८०–१०० किग्रा० पोटैशियम प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में डालनी चाहिए। गोबर की खाद का प्रयोग प्रथम जुताई के समय तथा रासायनिक उर्वरकों को अंतिम जुताई के समय खेत में डालना चाहिए।

बीजदर

बीजदर किस्म, बीज के आकार और बोने की विधि पर निर्भर करती है। यूरोपियन और एशियाई किस्मों का क्रमश १०–१२ और ८–१० किग्रा बीज एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त होता है। मोटे बीज की मात्रा पतले बीज की अपेक्षा अधिक लगता है।

बीजोपचार

बीज को बोने से पूर्व फफूँदीनाशक जैसे थीरम, बाविस्टिन या विटावैक्स की २.५–३.० ग्राम मात्रा से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करनी चाहिए। यदि बीजो को एन ए ए की १०–२० पी पी एम या जिब्रेलिक एसिड की ५–१० पी पी एम के घोल में बोने से पूर्व भिगोया जाये तो अंकुरण अच्छा होता है तथा साथ ही उपज भी अधिक प्राप्त होती है।

बुवाई का समय

मूली को साल भर उगाया जा सकता है, फिर भी मैदानी क्षेत्रो में सितम्बर से जनवरी तक एशियाई किस्में तथा सितम्बर से मार्च तक यूरोपियन किस्मो की बुवाई करते हैं। पर्वतीय क्षेत्रो में इसे मार्च से अगस्त तक बोया जा सकता है।

साल भर मूली उगाने हेतु सारणी

पूसा चेतकी	–	मार्च से अगस्त
पंजाब अगेती	–	अप्रैल से अगस्त
कल्यानपुर न0 १	–	अगस्त से सितम्बर

पूसा देसी	–	अगस्त से अक्टूबर
पंजाब सफेद	–	सितम्बर से अक्टूबर
पूसा रेशमी	–	मध्य सितम्बर से अक्टूबर

बोने की विधि

मूली की बुवाई कई प्रकार से की जाती है। जड़ो कि उचित विकास के लिए मेंड़ पर बुवाई करते हैं। मेंड़ो की आपसी दूरी ४५ सेमी तथा पौध से पौध की दूरी १० सेमी रखते हैं, इसके आलावा इसकी बुवाई ४.५ × ३.० मीटर की समतल क्यारियों में भी की जाती है। बीजों को कभी भी २.0–२.५ सेमी से अधिक गहराई पर नहीं बोना चाहिए।

सिंचाई एवं जलनिकास

मूली की सिंचाई उसकी उगाई जाने वाली किस्मों, भूमि एवं मौसम पर निर्भर करती है। अंकुरण के १५–२० दिन बाद पौधे जल का सर्वाधिक उपयोग करते हैं अतः इस समय सिंचाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। वर्षा ऋतु में यदि वर्षा नियमित रूप से होती रहे तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है, यदि काफी लम्बे समय से वर्षा न हुई हो तो सिंचाई कर देनी चाहिए। गर्मियों में ४–५ दिन तथा सर्दियों में १०–१५ दिन के अंतराल पर सिंचाई करते है।

जहाँ मूली के लिए सिंचाई अत्यंत आवश्यक है वहीं यह पानी के अधिक समय तक ठहराव को सहन नहीं कर सकती है यदि किसी कारणवश खेत में अतिरिक्त पानी इकट्ठा हो जाये तो उसे तुरंत निकाल देनी चाहिए।

खरपतवार नियन्त्रण

मूली की फसल के साथ उगे खरपतवारों का रोकथाम समय–समय पर करना अत्यन्त आवश्यक है, आमतौर पर २–३ बार निराई–गुड़ाई करना पर्याप्त होता है तथा इसी समय अतिरिक्त पौधों को भी निकाल देना चाहिए ताकि पौधों का समुचित विकास हो सके और अधिक उपज प्राप्त हो। रासायनिक रूप से खरपतवार नियंत्रण हेतु पेंडामेथीलिन की ३.५ लीटर मात्रा को ६००–७०० लीटर पानी में घोल कर बुवाई के तुरंत बाद छिड़काव करना चाहिए।

फसल सुरक्षा

कीट नियन्त्रण

मूली की फसल को विभिन्न प्रकार के कीट क्षति पहुंचते हैं जिनमे चैंपा (एफिड), सरसों की आरा मक्खी, चितकबरा बग प्रमुख हैं।

चैंपा या मोयला या माहू

चैंपा पौधे के सभी कोमल भागों का रस चूसता है। इस कीट के नियंत्रण हेतु मोनोक्रोटोफॉस के ०.०५ प्रतिशत के घोल का छिड़काव करना चाहिए, आवश्यकतानुसार १५ दिन बाद इसी दवा का फिर से छिड़काव करना चाहिए।

सरसों की आरा मक्खी

इस कीट के नियंत्रण हेतु क्विनालफॉस की ०.०५ प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए।

चितकबरा (पेटेण्ड) बग

इस कीट के नियंत्रण हेतु कार्बारिल ०.१ प्रतिशत के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

रोग नियन्त्रण

मूली की फसल को विभिन्न प्रकार के रोग भी हानि पहुॅचाते हैं जो निम्न हैं

आर्द्रपतन

इस रोग के नियंत्रण हेतु उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए।

बीजोपचार करने चाहिए जैसे – थीरम की ३.0 ग्राम मात्रा प्रति किग्रा बीज या गरम पानी में ५० डिग्री सेल्सियस पर ३० मिनट तक बोने से पूर्व उपचारित करनी चाहिए ।

सफेद रतुआ

इस रोग के नियंत्रण हेतु डाइथेन जेड ७८ के ०.२ प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए तथा उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए।

खुदाई और उपज

मूली की खुदाई उसके किस्म पर निर्भर करती है, आमतौर पर एशियाई किस्में ४० दिन बाद तथा यूरोपियन किस्में २५ दिन बाद खाने योग्य हो जाती हैं।

मूली की उपज भूमि की उर्वशाक्ति, उगाई जाने वाली किस्मों तथा फसल की देखभाल पर निर्भर करती है। उखाडने की अवस्था के अनुसार उपज १५०–२५० क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक मिल जाती है। पूसा हिमानी नामक किस्म ३६०–४०० क्विंटल तक उपज देती है, जबकि शरद ऋतू में जापानीज व्हाइट नमक किस्म ५२५ क्विंटल तक उपज देती है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

राजस्थान में खजूर का भविष्य

दीपिका शर्मा एंव अनिल कुमार सोनी
उद्यान विभाग,. श्री कर्ण नरेद्र कृषि महाविद्यालय,जोबनेर

खजूर भारत के शुष्क उष्ण क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण फल है। खजूर में शर्करा 60–65 प्रतिशत, लौह, कैल्शियम प्रोटीन प्रचुर मात्रा में पाऐ जातें है। खजूर और दूघ को साथ लिया जाए तो यह संतुलित भोजन की श्रेणी मे आता है। खजूर को खाया ही नही जाता, बल्कि इससे ,जूस शर्बत, पेस्ट, चटनी भी बनाए जाते है। खजूर की पत्तियों से कागज भी बनाया जाता है। एक किलोग्राम खजूर से 3150 कैलोरी के लगभग ऊर्जा प्राप्त होती है। भारत के शुष्क उष्ण क्षेत्र का 62 प्रतिशत राजस्थान मे विघमान है। पिछले डेढ दशक से राजस्थान के बीकानेर, जोघपुर, बाडमेर, जैसलमेर व गंगानगर में खजूर का क्षेत्र बढ रहा है। राजस्थान नहर के आने से खजूर की बागवानी में राजस्थान को नई दिशा मिली है।

मृदा :– खजूर किसी भी प्रकार की भूमि जहॉ अनुकूल तापमान व सिचाई की सुविधा में उगाया जा सकता है। रेतीली दोमट व रेगिस्तानी भूमि, जिसमे कुछ चिकनी मिट्टी व लवण हो, खजूर के लिए श्रेष्ठ है। खजूर न सिर्फ क्षारीय भूमि मे उगाये जा सकते है वरन्, यह अधिक लवणियता को भी सह सकता है। इस फल के लिए मिट्टी का पी.एच. 8 से 8.5 होना चाहिए। खजूर के प्ररोह के लिए अत्यधिक गर्मी व जड़ों के लिए अत्यधिक नमी चाहिए।

जलवायु:– खजूर के पेड़ गर्मी में 50 डिग्री से. व सर्दी में– 6 ड़िग्री से. तक तापमान सह कर लेता है, परन्तु फूल लगने व फल पकते समय 25–30 डिग्री से. तापमान उपयुक्त माना जाता है। खजूर को शुष्क उष्ण वर्षारहित व पालारहित रेगिस्तानी जलवायु की आवश्यकता होती है। खजूर के लिए 4200 से 5000 ताप इकाइयों की आवश्यकता होती है।

किस्में :–

1. **हल्लावी** – इस किस्म के फल छोटे, वर्षा व अधिक आर्द्रता के लिए प्रति सहनशील होते है। इसमें कुल घुलनशील शर्करा 32–42 प्रतिशत होती है। इस किस्म के फल पकने पर सिकुड जाते है। इसकी 68–92 किलो/पेड़ उपज होती है।

2. **डगलेट नूर**– इस किस्म के फल बडे आकार के, अधिक उपज वाले है। पके हुए फल वर्षा व अधिक आर्द्रता से जल्दी प्रभावी हो जाते है। इसमे 92–136 किलो/पेड़ उपज प्राप्त होती है।

3. **बरही** – इस किस्म के फल स्वादिष्ट एवं मध्यम आकार के होते है। यह अधिक उपज देने वाली किस्म है। इसके एक पेड से लगभग 136 किलोग्राम फल प्राप्त किये जा सकते है।

4. **जैयदी** – इस किस्म के फल छोटे एवं मघ्यम आकार के होते है। इस किस्म से लगभग 136 किलोग्राम प्रति वृक्ष फल प्राप्त हो जाते है।

प्रसारण :– खजूर का प्रसारण मुख्यतः दो प्रकार से होता है। 1. बीज 2. सकर्स। बीज से : पौधे को तैयार करने मे समय अधिक लगता है अर्थात इसमे वृद्धि की गति मन्द होती है। इस प्रकार से तैयार किये गये पौधे नर होंगे या मादा, पहले से पता नही चलता तथा इनमें फल भी देरी से लगते है। बीज से तैयार किए गए पौधे लम्बे समय तक मातृ वृक्ष के समान गुण भी नही रख पाते है।

सकर्स प्राय : जनक पौघे के तने के पास से निकलते है। पॉच साल के बाद खजूर का पेड 2 सकर्स प्रति वर्ष, 10 वर्षो तक देता है। सकर्स को वृक्ष से सावघानी से काट कर अलग कर लिया जाता है। इसको काटने के लिए 4–5 दिन पहले आघी मुलायम पत्तियों को व दो तिहाई बाहरी पत्तियो को काट देते है। काटने के पहले यह देखना आवश्यक है कि उसमें प्रर्याप्त जड़े हो । सकर्स को मार्च–अप्रेल या अगस्त –सितम्बर मे अलग किया जाता है। अलग करने के बाद इन्हे कही दूर भेजना हो तो सक्र्स को पोलीथीन मे डाल कर, मिट्टी के साथ बॉधना चाहिए।

सकर्स लगाने का तरीका :– सकर्स लगाने के एक महीने पहले 1.5 X 1.5 X 1.5 मीटर के गढ्ढे 10 X 10 मीटर की दूरी पर खोद देते है फिर 15 दिन बाद उसमे 20 किलोग्राम गोबर की सडी हुई खाद, 100 ग्राम यूरिया, 200 ग्राम सुपर फास्फेट, 50 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश और 250 ग्राम मिथाईल पैराथियॉन मिट्टी मिलाकर गढ्ढे को भर देते है तथा एक सिंचाई कर देते है। अब सकर्स को गढ्ढे के बीच मे लगा कर, अच्छी तरह दबा देना चाहिए फिर सिंचाई कर देनी चाहिए । व 1 दिन छोड कर 2 महीने तक सिचाई करते रहना चाहिए । जिससे उसकी जड़ो का विकास अच्छी तरह से हो जावे । सकर्स को अप्रेल के महीने मे लगाना चाहिए।

पोषण :– खाद व उर्वरको को दो समान भाग मे बॉट कर वर्ष मे दो बार देना चाहिए। पहला जनवरी – फरवरी तथा दूसरा बार अगस्त – सितम्बर मे देना चाहिए । इन उर्वरको व खाद को देने के लिए पहले तने के चारो तरफ गोलाकार कम गहरी खाई बनाकर मिट्टी मे मिला कर पानी देना चाहिए।

समय	गोबर की खाद (किलोग्राम)	अमोनियम सल्फेट (किलोग्राम)	सिंगल सुपर फास्फेट (किलोग्राम)	पोटेशियम सल्फेट (किलोग्राम)
अफलन की दशा मे	30–40	1.00–1.500	1.250–2.500	0.300–0.500
फलन की दशा मे	40–60	2.50–5.600	5.600–6.000	0.500–1.000

सिंचाई :– खजूर की बागवानी के लिए जड़े हमेशा नम रहनी चाहिए। नए लगाए सकर्स को एक सप्ताह तक रोजाना तथा अगले दो महीने तक एक दिन के अन्तर से सिंचाई करनी चाहिए, और इसके बाद एक सप्ताह के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए। सर्दियो मे सिचाई 30 दिन तथा गर्मियो मे 10 दिन के अन्तर पर करनी चाहिए। सिंचाई देते समय इस बात का घ्यान रहे, कि पानी सीधा पेड़ के तने के सम्पर्क मे नही आवे। गर्मी मे सिंचाई सुबह व रात्री मे करनी चाहिए, जिससे जड़े गर्म पानी के सम्पर्क मे न आवे।

परागण एवं फसल :– खजूर मे नर और मादा अलग पेड पर अलग–अलग पाए जाते है, खजूर के बाग मे 100 मादा पेडों के लिए 5 नर पेड रखने आवश्यक है। खजूर की व्यवसायिक स्तर की खेती के लिए पॉलीनेशन हाथ या मशीन द्वारा किया जाता है। इसमे 2–3 नर पेड ही काफी हाते है। जब मादा फूल फटता है तब उसमे 2–3 नर स्पेथ रख दिए जाते है। इस प्रकार नर व मादा फूलो का खजूर मे निषेचन होता है। साधारणतयाः स्पेथ फरवरी–मार्च मे निकलता है व फूलों का खिलना मार्च–अप्रैल मे होता।

काट–छॉट :– खजूर मे कभी कभी वयस्क पेडों की सूखी एवं बीमार पत्तियों को निकालना पडता है। इसमे पत्तियो की कटाई–छॅटाई भी करनी होती है। सौ पत्तियों /पेड रखने पर अत्याधिक फल मिलतें है, जबकी 1 वर्ष मे 20 पत्तियां निकालती है। इन्ही पत्तियो के गुच्छे से फल की लड़ियां प्राप्त होती है। अलग–अलग किस्म मे पत्तियो के गुच्छों की संख्या अलग–अलग रखते है।

कीट एवं रोग :– 1. **ताड का काला भृंग** – वयस्क कीट बन्द पत्तियों मे छेद कर रेषे जैसा बुरादा (पाउडर) निकालते है, इसके अधिक प्रभाव से पत्तियों गिर जाती है। कीट की रोकथाम के लिए मेलाथियान 50 ई. सी. 0.05% का 1 एम.एल./ली. का स्प्रे प्रयोग मे लाना चाहिए व जहॉ पर यह पाया जाए उन पत्तियों को अलग कर देना चाहिए।

2. **ताड का घुन** – इस कीट के सूँड पर ब्रुश की तरह बाल होते है, जो तने मे छेद कर देते है। प्रभावित पत्तियॉ पीली पड़कर गिर जाती है। इसकी रोकथाम के लिए स्टोव विक या रूई को 0.2% फेन्थियोन या डाइक्लोरोवॉस में भिगो कर बनाए गए छिद्रों मे इंजेक्सन के माध्यम से डालें।

3. **उखटा रोग** – यह रोग फयूजेरियम आक्सीपोरम कवक से होता है। आरम्भ मे पत्तियॉ का आधार सफेद हो जाता है, फिर इसके बढने से पत्तियॉ नष्ट होने लगती है। नई पत्तियॉ निकलनी रुक जाती है, पेड़ सूखने लगता है और शीर्ष कलिका नष्ट हा जाती है। रोकथाम के लिए रोगी पत्तियॉ अलग कर देनी चाहिए।

4. **पत्ती डंठल विगलन रोग**– यह रोग डिप्लोडिया फोइनीकम कवक से होता । इसका प्रकोप पहले नई पत्तियो व शाखाओ पर होता है। रोग का सन्देह होने पर 4:4:50 बोर्डो मिश्रण या 0.2 प्रतिशत कैप्टॉन के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

5. **मिथ्याकंड** (ग्राफियोला फिनिवस) – वातावरण मे अधिक आर्द्रता होने पर, इस रोग के होने की सम्भावना रहती है। इस रोग मे पत्तियो की दोनो सतहो पर भूरे धब्बे हो जाते है, जिससे पत्तियों सूखने लगती है। इसको रोकने के लिए 4:4:50 बोर्डो मिश्रण का छिडकाव करना चाहिए ।

उपज :– खजूर की उपज निम्न कुछ बातो पर निर्भर करती है– खजूर की किस्म, पेड की उम , लगाने का तरीका आदि। इसकी उपज 50 से 150 किलोग्राम /पेड के लगभग प्राप्त होती है।

अभी भी खजूर मे निम्न क्षेत्रों में कार्य किया जा सकता है––

1 छोटी (बोनी)किस्मे तैयार करना,

2 ब्रिडिग द्वारा अच्छे गुणों एवं अधिक उपज देने वाली रोगरहित किस्में तैयार करना,

3 ब्रिडिग द्वारा रोगो, वर्षा, आर्द्रता के प्रति सहनषील किस्मे तैयार करना,

4 ऐसी किस्मे तैयार करना जो जल्दी पक जाए।

राजस्थान मे शुष्क उष्ण क्षेत्र, जहॉ पर पानी उपलब्ध है, वहॉ पर इनके विकास पर कार्य किया जा सकता है, अतः राजस्थान में खजूर का भविष्य उज्जवल है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

भारत में जलवायु परिवर्तन रोकथाम के प्रभावी तरीके

अभिलाष[1], अजय कुमार[2], दीपक कुमार कोली[3] एवं सौरभ[4]

[1]कृषि मौसम विज्ञानं विभाग, कृषि महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय , हिसार 125004
[2]सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली –110012
[3]सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली –110012
[4]बागवानी विभाग, कृषि महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय , हिसार 125004

जलवायु परिवर्तन के कारण पृथ्वी पर विभिन्न संसाधनों की उपलब्धता पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, जो कि इस ग्रह पर जीवन को कायम रखते है। जीवमंडल, जैव विविधता और प्राकृतिक संसाधनों में परिवर्तन मानव स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहे हैं। 21 वीं सदी के दौरान भारत को वैश्विक स्तर से ज्यादा ग्लोबल वॉर्मिंग अनुभव करने का अनुमान लगाया गया है। ग्रीष्मकाल के मुकाबले भारत में सर्दियों के दौरान अधिक गर्मी के कारण तापमान में अधिक मौसमी बदलाव देखने को मिलेगा। पूरे भारत में गर्म लहरो की अवधि में दीर्घ विस्तार होने के कारण गर्म दिनों के साथ साथ रात्रि के तापमान में भी बढ़ोतरी देखी गयी है, और इस प्रवृत्ति के जारी रहने की भी उम्मीद है। भविष्य में कार्बन डाइऑक्साइड सांद्रता में दोहरीकरण के साथ औसत तापमान 2.33 डिग्री से 4.78 डिग्री सेल्सियस बढ़ने का अनुमान लगाया गया है। ये गर्म लहर ग्रीष्म ऋतू के दौरान होने वाली मानसून की बरसात में बढ़ती परिवर्तनशीलता को जन्म देगी, जिससे भारत में कृषि क्षेत्र पर भारी प्रभाव पड़ेगा। जलवायु मॉडल दुनिया भर में कार्बन डाइऑक्साइड सांद्रता और तापमान में क्रमिक वृद्धि की भविष्यवाणी भी कर रहे हैं। हालांकि, ये मॉडल स्थानीय मौसम स्थितियों में भविष्य के परिवर्तन की भविष्यवाणी में बहुत सटीक नहीं हैं। जब तक पौधे की बीमारियों को नियंत्रित किया जा सकता है, तब तक स्थानीय मौसम की स्थिति जैसे कि बारिश, तापमान, धूप और हवा के संयोजन में अनुकूलित वनस्पति की किस्मे, फसल प्रणालियाँ और मिट्टी की स्थिति के अनुमान से खाद्य उत्पादन को अधिकतम किया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन के समाधान

1. कृषि और खाद्य सुरक्षा

- मौसमी पानी की कमी, बढ़ता तापमान और समुद्री जल की घुसपैठ से फसल की पैदावार को खतरा है जिसके कारण अंततः देश की खाद्य सुरक्षा भी खतरे में आ सकती है ।
- यदि मौसम का रुझान इसी प्रकार बना रहा तो निकट भविष्य में चावल और गेहूं दोनों में पर्याप्त उपज की कमी की उम्मीद की जा सकती है।
- 2050 तक यदि 2 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ता है तो जितना अभी बिना जलवायु परिवर्तन के आयात है उस तुलना में देश को खाद्य–धान की मात्रा में दोगुने से अधिक आयात करना पड़ सकता है।
- **क्या किया जा सकता है :**
- फसल विविधीकरण
- फसल पद्धति, रोपण तिथियों एवम् कृषि क्रियाओ में परिवर्तन
- पानी का कुशलता से उपयोग
- बेहतर मिट्टी प्रबंधन प्रथाओं के साथ–साथ

- सूखा प्रतिरोधी फसलों को विकसित करने से कुछ नकारात्मक प्रभावों को कम करने में मदद मिल सकती है।

2 जल सुरक्षा

- अध्ययनों से पता चला है कि मानसून वर्षा की परिवर्तनशीलता में वृद्धि से कुछ क्षेत्रों में पानी की कमी में वृद्धि की संभावना है।
- यह अनुमान लगाया जा रहा है कि 2050 तक जलवायु परिवर्तन की वजह से सतह जल प्रवाह की मात्रा में कमी आ सकती है। यद्यपि जलवायु परिवर्तन परिदृश्य के तहत उत्तरी, मध्य और दक्षिणी भारतीय नदीयों की घाटि में वर्षा में वृद्धि का अनुमान है, हालांकि, इन सभी घाटियों के लिए कुल पानी का प्रवाह बढ़ने की संभावना नहीं है। बारिश के वितरण में बदलाव एवं तापमान बढ़ने से वाष्पीकरण में वृद्धि इसके प्रमुख कारण हो सकता है। शेष घाटियों में, वर्षा में कमी का अनुमान है।
- पानी की सुरक्षा का खतरा मध्य भारत के पश्चिमी घाट की पर्वत श्रृंखलाओं और भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में बहुत अधिक है। पश्चिमी क्षेत्रों की घाटियों में प्रमुख नदियों के, अर्थात साबरमती और लुनी के भविष्य के जल प्रवाह में वर्तमान के कुल जल प्रवाह से दो तिहाई तक घटने का अनुमान लगाया जा रहा है। ये स्थिति भविष्य में गंभीर सूखे का कारण बन सकती है। दो प्रमुख नदी, ब्राह्मणी एवं महानदी की प्रणालियों में बाढ़ से होने वाली स्थिति भी बिगड़ सकती है।
- **क्या किया जा सकता है**
- सिंचाई प्रणाली में सुधार, जल संचयन तकनीक, और अधिक कुशल कृषि जल प्रबंधन इन जोखिमों में से कुछ को सूक्ष्म कर सकते हैं।
- भूजल संसाधनों के कुशल उपयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

3 वर्षा का बदलता तरीका

- दुनिया के औसत तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से भारत का ग्रीष्म मानसून बेहद अप्रत्याशित हो जाएगा।
- 4 डिग्री सेल्सियस वार्मिंग पर, एक बेहद गीला मानसून जिसका वर्तमान में 100 वर्षों में से केवल एक बार होने का मौका आता है, वह शताब्दी के अंत तक हर 10 साल बाद होने का अनुमान है।
- मानसून में अचानक बदलाव एक बड़ा संकट पैदा कर सकता है जैसे की अधिक बार लगातार सूखा पड़ सकता है और साथ ही भारत के बड़े हिस्सों में अधिक से अधिक बाढ़ आने की स्तिथि भी आ सकती है।
- भारत के उत्तर–पश्चिमी एवं दक्षिण–पूर्वी तटीय क्षेत्रों में औसत बारिश से अधिक हो सकती हैं।
- सूखे वर्ष में अधिक सूखे और गीले साल में अधिक बाढ़ आने की संभावना है।
- **क्या किया जा सकता है :**
- मौसम पूर्वानुमान के लिए जल–मौसम संबंधी प्रणाली में सुधार एवं बाढ़ की चेतावनी प्रणालियों की स्थापना, मौसम संबंधित आपदा से होने वाले हमलों के नुकसान से पहले लोगों को आगाह कर एहतियात बरतने में मदद कर सकता है।
- बिल्डिंग कोड को यह सुनिश्चित करने के लिए लागू किया जाना चाहिए कि घर अथवा दूसरे बुनियादी ढांचे जोखिम में नहीं हैं।

4 अत्यधिक गर्मी एवं सूखा

- 2 डिग्री सेल्सियस वार्मिंग के तहत, पश्चिमी तट और दक्षिणी भारत की जलवायु व्यवस्था में उच्च तापमान बदलने की संभावना है जिससे कृषि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा।
- कुछ इलाकों में विशेष रूप से उत्तर–पश्चिमी भारत, झारखंड, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ में सूखे की संभावना अधिक होने की संभावना है।
- 2040 के दशक तक चरम गर्मी के कारण फसल की पैदावार में काफी गिरावट की उम्मीद सकती है।
- **क्या किया जा सकता है** :
- निर्मित शहरी क्षेत्र तेजी से ''गर्म–द्वीप'' बनते जा रहे है जिसे मद्देनजर रखते हुए शहरी नियोजकों को इन प्रभावों को कम करने के लिए कारगर उपायों को अपनाना होगा।
- सूखा प्रतिरोधी फसलों के विकास के लिए अनुसंधान एवं विकास में निवेश नकारात्मक प्रभावों में से कुछ को कम करने में मदद कर सकता है।

5 पिघलते हिमनद (ग्लेशियर)

- 2.5 डिग्री सेल्सियस वार्मिंग से, पिघलने वाले हिमनद और हिमालय के ऊपर बर्फ की कमी के कारण उत्तरी भारत की मुख्य रूप से ग्लेशियर–फेड नदियों, विशेषकर सिंधु और ब्रह्मपुत्र की स्थिरता और विश्वसनीयता को खतरा होने की संभावना है।
- मानसून के दौरान उच्च वार्षिक वर्षा की वजह से गंगा नदी को हिमनद से पिंघले हुए पानी पर कम निर्भर होगा।
- बसंत ऋतू के दौरान बर्फ पिंघलने से सिंधु और ब्रह्मपुत्र नदी के जल प्रवाह में वृद्धि, साथ ही बसंत ऋतू के अंत और ग्रीष्म ऋतू में जल प्रवाह में कमी देखने की उम्मीद है।
- सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के प्रवाह में परिवर्तन सिंचाई और उन घाटियों में रह रहे लाखों लोगों की आजीविका (सिंधु घाटी में 20.9 करोड़ , गंगा घाटी में 47.8 करोड़, और ब्रह्मपुत्र घाटी में 6.2 करोड़) पर काफी प्रभाव डाल सकता है।
- **क्या किया जा सकता है**:
- बसंत ऋतू में नदी के जल प्रवाह में हुई बढ़ोतरी से लाभ के लिए जल भंडारण की क्षमता में बड़े निवेश की आवश्यकता होगी और यह बसंत ऋतू के बाद में कम हुए जल प्रवाह की क्षतिपूर्ति भी कर सकेगा।

6 समुद्र स्तर में वृद्धि

- भूमध्य रेखा के करीब होने के कारण, उच्च अक्षांशों के मुकाबले भारत उप–महाद्वीप का समुद्र स्तर बहुत अधिक बढ़ेगा।
- समुद्र स्तर में वृद्धि और तूफानी लहरो के बढ़ने के कारण तटीय क्षेत्रों में खारे पानी की अधिक घुसपैठ होगी, कृषि पर नकारात्मक असर पड़ेगा, भूजल की गुणवत्ता खराब होगी, पीने के पानी के दूषित होने से संभवतः दस्त/अतिसार मामलों और हैजा के प्रकोप में वृद्धि हो सकती है, क्योंकि हैजा जीवाणु लंबे समय तक खारे पानी में रहता है।
- दोनों घनी आबादी वाले शहर, विशेषकर कोलकाता और मुंबई, समुद्र स्तर के उदय, उष्णकटिबंधीय चक्रवातों और तटवर्ती बाढ़ के प्रभावों की चपेट में हैं।

➢ **क्या किया जा सकता है :**

- बिल्डिंग कोड को सख्ताई से लागू करने की आवश्यकता होगी और शहरी नियोजन को जलवायु से संबंधित आपदाओं के लिए तैयार करने की आवश्यकता होगी।
- जहां आवश्यक है वहां तटबंधों के निर्माण अनिवार्य होगा और तटीय विनियमन क्षेत्र कोड को भी सख्ती से लागू करना होगा।

7 स्वास्थ्य

- मलेरिया और अन्य रोगवाहकों से होने वाली बीमारिया, साथ में दस्त/अतिसार का संक्रमण जो कि बाल मृत्यु दर का एक प्रमुख कारण है, उन क्षेत्रों में भी फैलने की संभावना है जहां तापमान पहले ही ठंडा है और बीमारी का ट्रांसमिशन सीमित है।
- पहचानी गई हॉटस्पॉट्स में स्वास्थ्य प्रणालियों को मजबूत करने की आवश्यकता होगी।
- उच्च ताप की गर्म लहरों से होने वाली मृत्यु और चरम मौसम की घटनाओं से होने वाली हानि में बहुत अधिक वृद्धि होने की संभावना है।

➢ **क्या किया जा सकता है :**

- मौसम पूर्वानुमान के लिए जल–मौसम संबंधी प्रणालियों में सुधार और बाढ़ की चेतावनी प्रणालियों की स्थापना की जाए, मौसम संबंधित आपदाओं से होने वाले हमलों की जानकारी लोगों तक समय से कुछ पहले पहुंचा दी जाए तो जान एवं माल का कम से कम नुकसान होने में मदद मिल सकती है।

बिल्डिंग कोड को यह सुनिश्चित करने के लिए लागू किया जाना चाहिए कि घर और अन्य बुनियादी ढांचे जोखिम में नहीं हैं।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

जायद मूंग की खेती

मुकेश चौधरी, अंनु देवी गोरा, रश्मि भिण्डा एवं सुशीला ऐचरा
प्रसार शिक्षा विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर

मूंग एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है इसमें प्रोटीन अधिक मात्रा में (लगभग 25 प्रतिशत) पाया जाता है। इसके अलावा इसमें कार्बोहाइड्रेट, खनिज तत्त्व व विटामिन भी होते हैं.साथ ही कम समय में ही पकने वाली एवं भूमि कि उर्वरता शक्ति बढाने वाली फसल है। सामान्यतया राजस्थान में मूंग की फसल खरीफ में ली जाती है किन्तु इसे रबी फसल की कटाई और खरीफ की बुआई के अंतराल में मूंग की फसल लेकर खेतों का खाली समय का सदुपयोग, भूमि की उपजाऊ शक्ति में सुधार, पानी की सदुपयोग आदि के कई फायदे है जिससे किसान भाई अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते है सिंचित क्षेत्र और खासकर दोमट रेतीली और रेतीली चिकनी मिट्टी में मूंग की फसल ली जा सकती है। इसकी बुआई 15 फरवरी से लेकर 15 मार्च तक होती है। जायद के मूंग की फसल 75 से 80 दिन में पक जाती है। मई के तीसरे से चौथे सप्ताह के बीच इसकी कटाई की जा सकती है।

उन्नत किस्मेः–

जायद मूंग की अधिक उपज देने वाली किस्मों का चयन करें जैसे– पन्त मूंग 2 ,नरेन्द्र मूंग 1, मालवीय जाग्रति, सम्राट मूंग, जनप्रिया, मेहा, मालवीय ज्योति, एस.एम.एल.–668, एस.–8, एस.–9, आर.एम.जी. –62, प्रजातिया जायद मूंग के लिए उपयुक्त है।

भूमि की तेयारी :–

मूंग की खेती के लिए दोमट एवं बलुई दोमट भूमि सर्वोत्तम होती है। पहली जुताई मिटटी पलटने वाले हल या डिस्क हैरो चलाकर करनी चाहिए तथा फिर एक क्रॉस जुताई हैरो से एवं एक जुताई कल्टीवेटर से कर पाटा लगाकर भूमि समतल कर देनी चाहिए।

बीज की मात्रा एवं बुवाईः–

एक हैक्टेयर क्षेत्रफल हेतु 15–20 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है। कतार से कतार की दूरी 25–30 सेन्टीमीटर एवं पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेन्टीमीटर रखें बीज की बुआई 4-5 सेमी गहराई में करनी चाहिए जिससे कि गर्मियों में जमाव हो सके एवं गर्मियों कि फसल में नमी को बनाये रकने के लिए बुआई के पश्चात् हल्का पाटा लगाना चाहीए।

बीजोपचार :–

1 ग्राम कार्बेन्डाजिम व 2 ग्राम थायरम या 3 ग्राम थायरम फफूंदनाशक दवा से प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करने से बीज एवं भूमि जन्य बीमारियों से फसल की सुरक्षा होती है। इसके बाद बीज को रायजोबियम कल्चर से उपचारित करें। 5 ग्राम रायजोबियम कल्चर प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करें और छाया में सुखाकर शीघ्र ही बुवाई करना चाहियें। इसके उपचार से रायजोबियम की गाँठें ज्यादा बनती है।

खाद एवं उर्वरक की मात्रा एवं देने की विधि :–

दलहन फसल होने के कारण मूंग को कम नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। उर्वरको का प्रयोग मृदा परीक्षण के बाद मिट्टी की जरुरत के अनुसार ही करना चाहिए। फिर भी 15 से २० किलोग्राम नत्रजन, 40 किलोग्राम फास्फोरस, 20 किलोग्राम पोटाश की जगह सल्फर प्रति हेक्टेयर तत्व के रूप में प्रयोग करना चाहिए। इन सभी की पूर्ण मात्रा बुवाई के समय कूड़ो में बीज से 2 से 3 सेंटीमीटर नीचे देना चाहिए इससे अच्छी पैदावार मिलती है।

सिचाई :–

जायद की फसल में खरीफ से अधिक सिचाई कि आवश्यकता होती है इसलियें पहली सिचाई बुवाई के 30 से 35 दिन बाद और बाद में हर 10 से 15 दिन के अंतराल पर सिचाई करते रहना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण :–

फसल की बुवाई के एक या दो दिन पश्चात तक पेन्डीमेथालिन की 3.30 लीटर मात्रा को 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टयर की दर से छिड़काव करना चाहिए एवं बुआई के 30 से 35 दिन बाद कस्सी कि सहायता से निराई गुड़ाई करनी चाहियें जिससे खरपतवार नष्ट होने के साथ वायु संचार भी होता है, जिससे पैदावार बढती है।

फसल संरक्षण :–

मूंग की फसल में थ्रिप्स, हरे फुदके एवं सफेद मक्खी कीट लगते है इनमे नियंत्रण के लिए क्यूनालफास 25 ई सी 1.25 लीटर मात्रा 600 से 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिडकाव करना चाहिए. जिससे की कीटों का प्रकोप न हो सके।

मूंग में चित्ती जीवाणु रोग का प्रकोप होने पर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 20 ग्राम तथा सवा किलो कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का प्रति हैक्टेयर की दर से पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

मूंग में पीत शिरा मोजेक रोग होने पर रोगग्रसित पौधों को उखाड़ दें एवं डायमिथोएट 30 ई. सी. एक लिटर दवा को 300 लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। आवश्यक हो तो 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव दोहरायें।

छाछ्या रोग की रोकथाम हेतु प्रति हैक्टेयर ढाई किलो घुलनशील गंधक अथवा एक लिटर कैराथियॉन (0.1 प्रतिशत) के घोल का पहला छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देते ही एवं दूसरा छिड़काव 10 दिन के अन्तर पर करें।

फसल कटाई :–

मूंग की फलियों जब काली परने लगे तथा सुख जाये तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए अधिक सूखने पर फलियों चिटकने का डर रहता है, फलियों से बीज को थ्रेसर द्वारा या डंडे द्वारा अलग कर लिए जाता है।

उपज :–

किसान भाई सभी तकनीकी प्रयोगों से सामान्यतः जायद कि फसल में 10–12 कुंटल प्रति हेक्टेअर तक प्राप्त होती है।

भण्डारण :–

बीज को अच्छी तरह सूखा कर भण्डारण करना चाहियें एवं सूखी नीम की पत्ती का प्रयोग करने से भण्डारण में कीड़ो से सुरक्षा की जा सकती है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

प्राइमिंग विधि से बीजों की अंकुरण गुणवत्ता को बढ़ाकर अधिक लाभ कमायें किसान

[1]काना राम कुमावत*, [2]रवि कुमार और [3]रवि कुमावत

[1]शोध छात्र, पादप प्रजनन एवं आनुवांशिक विभाग, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)
[2]शोध छात्र, पादप प्रजनन एवं आनुवांशिक विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान)
[3]शोध छात्र, पादप प्रजनन एवं आनुवांशिक विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
*ई–मेल : kanaramkumawat8@gmail.com

परिचय

बीजों की अंकुरण गुणवत्ता अथवा बुवाई के बाद खेत में बीजों का उच्च तथा एक समान रुप से उगना अच्छी फसल के लिए आवश्यक है। वातावरण की विषम परिस्थितियों में बीज का उगाव अपेक्षाकृत कम होकर एक समान नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप देश के किसान अधिक आय की आशा में समयपूर्व बुवाई कर अधिक उपज हेतु सामान्य से अधिक बीज–दर अपनाते है। अंकुरण ही फसल की ऐसी अवस्था है जो पादप वृद्दि को मुख्य रूप से प्रभावित करती है। अगर अंकुरण ही सही प्रकार और सही समय पर नहीं हो पाता है तो वह फसल की उपज को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। कम गुणवता युक्त बीज की बुवाई उपरांत उगाव प्रतिशत सुधारने में बीज प्राइमिंग विधि उपयोगी साबित हो सकती है।

बीज प्राइमिंग विधि क्या है?

प्राइमिंग एक बुवाई पूर्व बीज उपचार विधि है जो पौधों के अंकुरण समय को कम करने तथा एक समान अंकुरण लिए उपयोग में ली जाती है। इस विधि में बीजों को उनकी अंकुरण पूर्व चयापचय गतिविधियों को आगे बढने तक नियमित जलयुक्त किया जाता है। इसमे बीजों में प्राथमिक मूलांकूरण प्रक्रिया आरंभ की जाती है परंतु मूलांकूर को बीजावरण से बाहर निकलने से रोका जाता है तथा साथ ही बीज को बोने से पूर्व सुषुप्तावस्था से जगाया जाता है।

बीज प्राइमिंग क्यों है जरूरी?

- ❖ कुछ बीजों में सुषुप्तावस्था को जगाने के लिए।
- ❖ अंकुरण और उभरने के लिए आवश्यक समय कम करने के लिए।
- ❖ एकरूपता में सुधार, उत्पादन प्रबंधन में सहयोग और फसल समानता से पकने के लिए अवसर बढ़ाने के लिए।
- ❖ तापमान सीमा का विस्तार करने के लिए जिस पर बीज अच्छी तरह अंकुरण कर सकता है।
- ❖ किसी विशेष तापमान पर अंकुरण दर को बढ़ाने के लिए। यह बाद में पुनर्जलीकरण पर लगभग 50 प्रतिशत तक प्रक्षेत्र में अंकुरण समय को कम करता है।

बीज प्राइमिंग की प्रमुख विधियाँ

बीज प्राइमिंग कई प्रकार की विधियों से की जा सकती है परंतु मुख्य रूप से उपयोग में ली जाने वाली विधियाँ जो अधिक प्रभावकारी है, निम्नलिखित है–

हाइड्रो या जल प्राइमिंग

इस विधि में बीजों को बुवाई से पहले एक निश्चित काल तक जल में भिगोया जाता है। भिगोने का समय बीज की किस्म अथवा प्रकार पर निर्भर करता है। भीगने का समय पूरा होने पर, बीज सतह को वस्त्र की परत में दबा कर या फिर धूप में सुखाया जाता है। सुरक्षित सीमा की जानकारी होने पर किसान अपने बीज की

हाइड्रो प्राइमिंग कर सकते है। इन सीमाओं की गणना इस सावधानी से की जाती है कि जल से विलग कर देने पर इनकी अंकुरण क्रिया चालू न रहे। उदाहरण के तौर पर मटर के बीज को जल में सामान्य तापमान पर 12 घंटे भिगो कर हाइड्रो प्राइमिंग की जा सकती है।

ओस्मो प्राइमिंग

इस विधि में बीजों को परीक्षण नली या सिलेन्डर में –0.5 से –1.0 मेगा पास्कल अथवा –5.0 से –10 बार तक के पोली इथाइलिन ग्लाइकोल–6000 (पी.ई.जी.–6000) के घोल में भिगोया जाता है। प्रक्रिया के दौरान एक शीशे की नली द्वारा जो एक रबर पाइप के द्वारा अक्वेरियम पंप से जुड़ी होती है, बीजों में वायु संचार किया जाता है। यह 2 से 7 दिन तक एक स्थिर तापमान (20 से 25 डिग्री से.) पर की जाती है। स्थिर आयतन बनाये रखने के लिए पात्र में आवश्यकतानुसार आसुत जल दिया जाता है। प्राइमिंग क्रिया पूर्ण होने पर बीजों को उपरोक्त घोल से निकाल कर जल से प्रक्षालित करके उनकी सतह को तत्काल सुखा लिया जाता है। उदाहरण– टमाटर के बीजों को पी.ई.जी. (–1.0 मेगा पास्कल अथवा –10 बार) में 25 डिग्री से. ताप पर 6 दिन भिगोये।

हेलो प्राइमिंग

बीजों को एक निश्चित समय तक निश्चित तापमान पर निश्चित रासायनिक घोल में भिगोकर हेलो प्राइम किया जाता है। सामान्यतया पौटेशियम नाइट्रेट, कैल्सियम नाइट्रेट और मैग्नीशियम नाइट्रेट के 10 से 30 मि. मोलर सांद्रता वाले घोल प्रयोग में लिए जाते है। भिगोने का समय पूर्ण होने पर बीज को घोल से निकाल कर सुखा लिया जाता है। उदाहरण– टमाटर के बीजों को पौटेशियम नाइट्रेट (15 मि. मोलर में) 20 डिग्री से. तापमान पर 20 घंटे भिगोये।

सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग

इस प्रक्रिया हेतु 100 ग्राम बीज की मात्रा को 200 ग्राम वर्मिकुलाइट जिसमे 250 मी. लिटर जल मिला होता है, में भिगोया जाता है। वर्मिकुलाइट तथा बीज को अच्छी तरह मिला करके, एक प्लास्टिक थैली में बंद करके उन्हे निश्चित तापमान पर निश्चित काल तक इंक्यूबेट करते है। इंक्यूबेशन काल की समाप्ती पर बीज को छानकर मूल नमी तक सुखा लिया जाता है। मूल नमी तक सुखाने के उपरांत बीज को बोया जा सकता है। उदाहरण– करेले तथा मिर्च के बीज को वर्मिकुलाइट मृदा में 20 डिग्री से. तापमान पर 48 घंटे तथा भिंडी के बीज को 20 घंटे तक रखे।

पी.जी.आर. प्राइमिंग

इस विधि में बीज को निश्चित समय तक एक निश्चित पादप हार्मोन अथवा पादप वृद्दि नियामक की निश्चित सांद्रता पर निश्चित समय तक रखा जाता है। उदाहरण– पपीता के बीजों को जी.ए.–3 अथवा जिबरेलिक अम्ल–3 (2 मि. मोलर में) 24 घंटे भिगोये।

बीज प्राइमिंग के लाभ

- ❖ बुवाई उपरांत प्रक्षेत्र–मृदा में तीव्र एवं एक समान उगाव होता है।
- ❖ उतम पौध औज एवं जड़ों का अच्छा विकास होता है।
- ❖ विषम वातावरणीय तापमान पर भी समुन्नत पौध जमाव होता है।
- ❖ उतम फसल विकास तथा उपज प्राप्त होती है।
- ❖ फसल खरपतवारों के साथ अधिक प्रभावी ढंग से प्रतिस्पर्धा कर सकती हैं।
- ❖ प्राइमिंग किसानों को अपने जल के उपयोग और समयबद्धन को बेहतर नियंत्रण करने में सहायता देता है।
- ❖ प्राइमिंग बीज–जनित कवक और बैक्टीरिया की मात्रा को समाप्त या बहुत कम कर सकता है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

हल्दी उत्पादन की उन्नत तकनीक

विनीता कुमारी मीना, एवं सानिया

उद्यान विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर–313001

Author's mail : meenavinita1991@gmail.com

हल्दी की खेती इसके भूमिगत कन्दो, घनकंदो व प्रकंदो के लिए की जाती है। वाणिज्यिक भाषा में इन्हीं कन्दो को हल्दी कहते हैं। हल्दी का मुख्य उपयोग मसाले के रूप में किया जाता है परन्तु यह रंग व औषधि के रूप में भी काम में ली जाती है। मसाले के रूप में हल्दी खाद्य पदार्थो का स्वाद बढ़ाने के साथ–साथ उनको अपने रंग से आकर्षक भी बनाती है। दवाईयों के रूप में हल्दी के अनेक उपयोग है जैसे शरीर के कटे भाग पर हल्दी का चूर्ण लगाना, सर्दी जुकाम में दूध के साथ पिलाना शरीर के जोड़ो के दर्द में तथा पुरानी खॉसी में हल्दी का पाक बनाकर खिलाना आदि। आयुर्वेद में हल्दी का उपयोग कई दवाईयों के निर्माण में होता है।

हल्दी की गुणवत्ता का आधार इसमें पाये जाने वाले रंगीन पदार्थ ''क्युरक्युमिन'' व वाष्पशील तेल की मात्रा है। सूखी हल्दी या चूर्ण में क्युरक्युमिन की मात्रा 2.6 से 6.6 प्रतिशत तक है।

जलवायु एवं भूमि :–

हल्दी की फसल के लिए उष्ण व तर जलवायु की आवश्यकता होती है। इसके पौधे हल्की छाया में भी सफलतापूर्वक वृद्धि कर सकते है।

हल्दी के लिए बलुई दोमट और मटियार दोमट मिट्टी जिसकी उपजाऊ क्षमता अच्छी हो तथा जल निकास प्रबन्ध भी अच्छा हो, उपयुक्त मानी जाती है। भूमि का पी.एच. मान 6 से 7 के बीच में उपयुक्त माना जाता है। खेत तैयार करते समय एक गहरी जुताई एवं 3–4 बार हल या हैरो से जुताई करके साथ ही पाटा चलाकर खेत तैयार कर लिया जाता है।

उन्नत किस्में:–

1. **बी.एस.आर–1**:– यह एक्स किरण उत्परिवर्तन द्वारा तैयार किस्म है। यह जलाक्रांत खेत के लिये उपयुक्त है तथा इसका प्रकंद चमकीला नारंगी होता है। इसमें 4.2 प्रतिशत क्युरक्युमिन होता है तथा यह 285 दिन में परिपक्व होती है।

2. **सुगंधम:**–इसका प्रकंद ललाई युक्त पीला होता हैं। सुगठित लंबी अगुलियां जिसमें अच्छी सौरभ होती है। यह 210 दिन में परिपक्व होती है।

3. **स्वर्णा:**–इसका प्रकंद मध्यम आकार का गहरा नारंगी रंग का होता है। इसमें 8.7 प्रतिशत क्युरक्युमिन होता है। इसका प्रकंद गलन प्रतिरोधी होता है।

4. **रोमा:**– यह अधिक पैदावार वाली तथा बीमारियों से कम प्रभावित होने वाली किस्म है। इसमें 9.3 प्रतिशत क्युरक्युमिन तथा 4.2 प्रतिशत तेल होता है तथा 253 दिन में परिपक्व होती है।

5. **सुरोमाः**—यह भी अधिक पैदावार वाली किस्म है। इसके प्रकंद में अंगुलियॉ बेलनाकार होती है तथा गूदा नारंगी पीला होता है। इसमें 9.3 प्रतिशम क्युरक्युमिन तथा 4.4 प्रतिशत तेल होता है। यह 210 दिन में परिपक्व होती है।
6. **सुगना(पी.सी.टी.—13):**—इसका प्रकंद मोटा व स्थूल होता है तथा यह बीमारियों के प्रति प्रतिरोधी होता है। यह अगेती किस्म है जो 190 दिन में तैयार होती है।

खेत की तैयारीः—

हल्दी की फसल के लिए खेत की तैयारी भली—भांति करनी आवश्यक है। पहली गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से और 3—4 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करके मिट्टी को भुरभुरी बना लेना चाहिए। अंतिम जुताई से पहले खेत में 250 से 300 क्विंटवल प्रति हैक्टर की दर से देशी खाद या कम्पोस्ट बिखेर दें ताकि आखिरी जुताई के समय वह मृदा में इकसार मिल जाए।

बुआई का समय एवं बोने की विधीः—

हल्दी की फसल की बोआई वैसे तो अप्रैल से जुलाई तक की जा सकती है परन्तु जहां पर सिंचाई के साधन हो बोआई अप्रैल—मई में ही कर देनी चाहिए। हल्दी को तीन प्रकार से लगाया जा सकता हैं। समतल भूमि में, डोलो पर और ऊँची उठी हुई क्यारियों में। बलुई दोमट मिट्टी में हल्दी समतल भूमि में लगा सकते है लेकिन मध्यम व भारी भूमि में बोआई सदेव डोलों पर एवं उठी हुई क्यारियों में ही करनी चाहिए। बोआई सदैव पंक्तियों में करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से 40 से.मी. एवं पंक्तियों में कंद से कंद की दूरी 20 से 25 से.मी. रखनी चाहिए। इस प्रकार एक हेक्टेयर क्षैत्र के लिए 20 से 25 क्विंटल बीज (कंद) की आवश्यकता होती है। कंद लगाते समय विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कंद की आंखे ऊँपर की तरफ हो साथ ही कंद को 4—5 से.मी. की गहराई पर लगाकर मिट्टी से ढ़क देना चाहिए। कंद भी ऐसे चुनने चाहिए जिनका वजन 20—22 ग्राम हो और कम से कम प्रत्येक कंद में दो आंखे हों। बुआई से पूर्व कंद को 0.2 प्रतिशत मैन्कोजेब के घोल में 5 मिनट तक डुबोकर उपचारित करना चाहिये।

पलवार लगानाः—

फसल की बुआई के तुरंत बाद पलवार लगाना लाभदायक है। पलवार के लिए 150 से 200 क्विंटल प्रति हैक्टर की दर से ढ़ैंचा, सनई या अन्य हरी पत्तियां उपयुक्त पाई गई है। पलवार से भूमि की नमी अधिक समय तक बनी रहती है, फसल का उगाव बढ़िया होता है तथा खरपतवार भी रूक जाते है।

खाद एवं उर्वरकः—

इसकी खेती के लिए 250 से 300 क्विंटल प्रति हैक्टर गोबर की खाद या कम्पोस्ट, 30—100 किलो नाइट्रोजन, 30—80 किलो फॉस्फोरस व 60—100 किलो पोटाश प्रति हैक्टर की दर से दिया जाना उपयुक्त है। फॉस्फोरस की पूरी व पोटाश की आधी मात्रा जुताई के समय भूमि में मिला दें व नाइट्रोजन की पूरी व पोटाश की शेष मात्रा दो भागों में बांटकर खड़ी फसल में पहली किश्त बुआई के 30 दिन बाद व शेष 60 दिन बाद दें।

सिंचाईः—

हल्दी की फसल को अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। जलवायु, भूमि की बनावट, वर्षा तथा पलवार के अनुसार 7 से 20 दिन के अंतराल से सिंचाई की आवश्यकता होती है। कुल 16—18 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है।

खरपतवार नियन्त्रणः—

खरपतवारों को नष्ट करने के लिए कम से कम दो—तीन निराई—गुड़ाई अवश्य करें। अक्टूबर से नवम्बर के महिनें में जब निराई—गुड़ाई की जाए तो पौधों के आधार पर मिट्टी भी चढ़ा देनी चाहिए, जिससे प्रकंदो का समुचित विकास हो।

बीमारियॉ व रोकथामः–

1. **पत्ती–धब्बेः–**यह बीमारी 'कोलेटोट्रीकम केप्सीसी' नामक कवक से होती है। रोग–ग्रसित पौधे की पत्तियों व कभी–कभी पर्ण छाद पर भी धब्बे बन जाते है, जो 4 से 5 से.मी. लम्बे व 3 से.मी. चौड़े होते है। ये धब्बे आपस में मिलकर अधिक बड़े धब्बे बनाते हुए सारी पत्ती को घेर लेते है।

   उपचार– कंदो को बुआई से पूर्व 0.2 प्रतिशत मेन्कोजेब से उपचारित करे।
   डाइथेन जेड– 78 के 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करे।

2. **पत्ती चित्तीः–**यह बीमारी 'टेफरीना मेक्यूलेन्स' नामक कवक के कारण होती है। इसमे पत्तियों के भीतरी व बाहरी दोनों ही पटलों पर ललाई–युक्त भूरे धब्बे बन जाते है व पत्तियॉ शीघ्र ही पीली पड़ जाती है। आक्रमण की प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों पर हल्के धब्बे बनते है जो बाद में गंदले पीले होते हुये ललाई–युक्त भूरे रंग में बदल जाते है।

   उपचारः– डाइथेन–जेड 78 (0.2 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करें।

3. **प्रकंद गलनः–**यह रोग 'पीथीयम ग्रेमीनीकोलम' कवक के आक्रमण से होता है। रोग ग्रसित पौधे की पत्तियॉ सूखने लगती है। पत्तियों के सूखने के साथ ही प्ररोह के आधार पर जलीय गलन–धब्बे दिखाई देने लगते है। ऐसे पौधों की जड़े भी गलना शुरू हो जाती हैं। रोग बढ़कर प्रकंदो पर आक्रमण करता है, जिससे उनका रंग पहले चमकीले हल्के संतरे से बदल कर भूरा–भूरा हो जाता है। तत्पश्चात प्रकंद नरम होकर गलना शुरू हो जाते हैं।

   उपचारः–रोग ग्रसित पौधों को निकालकर जला देना चाहिए।

   सेरेसन वेट (1 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करे।

   कंद 0.1 प्रतिशत मेन्कोजेव से उपचारित करके ही बोने चाहिए।

प्रमुख कीट

1. उत्तक बेधक– इसमें प्ररोह बेधक तथा प्रकंद मेगट मुख्य है। प्ररोह बेधक तने को खाकर 'मृत केन्द्र' बना देता है। एक तने के मरने पर जो दूसरे तने विकसित होते है, उनको भी यह कीट खा जाता है।

उपचार–क्यूनालफॉस 1.5 मिली दवा/लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करना चाहिए।

2. हैस्पेरिड कातरा– यह पत्तियों को खाता है।

उपचार–फॉस्फोमिडान 85 ईसी 0.5 मिली या इमिडाक्लोप्रिड 1 मिली दवा प्रति 3 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए।

3. थ्रिप्सः–यह कीट पत्तियों को खुरचकर खाता है जिसके कारण पौधे कमजोर हो जाते हैं।

उपचार–फॉस्फोमिडान 85 ईसी 0.5 मिली या इमिडाक्लोप्रिड 1 मिली दवा प्रति 3 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए।

फसल की कटाई व रचाईः–

हल्दी की फसल 8–10 माह में पककर तैयार हो जाती है। फसल के पकने पर पत्तियां पीली पड़ जाती है तथा सूख जाती है। इस समय घनकंद पूर्ण विकसित हो जाते है। इनको भूमि से निकाल कर ऊँपर की पत्तियां आदि काटकर अलग कर देते है। प्रकंदो की मिट्टी हटाकर पानी से अच्छी तरह धो देते है।

उपचार व सुखानाः–

फसल की खुदाई के बाद प्रकंदो को साफ करके 5–7 दिन तक ढ़ेर में पत्तियों से अच्छी तरह ढ़क कर रखते है, फिर ढ़ेर से प्रकंदो को निकाल कर उनको आकार के अनुसार छोटे व बड़े आकार वाले प्रकंदों में विभक्त कर देते है। फिर इनको मिट्टी के घड़ो या लोहे की कड़ाही में उबालते है। उबालते समय पानी थोड़ा गोबर व हल्दी की पत्तियॉ डालने से हल्दी का रंग अधिक आकर्षक हो जाता है। गोबर की जगह चूने के पानी या सोडियम बाई कार्बोनेट या सोडियम कार्बोनेट के हल्के घोल की अनुशंसा की है। जब प्रकंद मुलायम होकर अंगुलियों से दबने लग जाए तो उबालना बंद कर दें। बर्तन में झाग तथा भाप में हल्दी की खुशबू आने लगे तो उबालना तुरंत बंद कर देना चाहिए। उबली हुई गांठो को 7–8 दिन तक धूप में सुखाते हैं। अच्छी तरह सुखाने के बाद गांठो को किसी खुरदरी चीज से रगड़ा जाता है जिससे वह पूर्णतया साफ हो जाती है। घिसाई के समय हल्दी का चूर्ण मिलाया जाता है जिससे गांठो पर पॉलिश अच्छी आती है। इन सूखी व पॉलिश की हुई गांठो को बोरियों में भरकर नमी–रहित गोदामों में रख दिया जाता हैं।

उपजः–सिंचित क्षेत्रों में शुद्ध फसल से 150 से 200 क्विंटल प्रति हैक्टर कच्ची हल्दी प्राप्त होती है। सुखाने के बाद कच्ची हल्दी की यह उपज 15 से 25 प्रतिशत तक कम बैठती है।

बीजू प्रकंदो का भण्डारणः– बीज के लिए चुने हुये मातृ प्रकंद या सुबिकसित ऑखों वाली फिन्गर्स छांट कर रख ली जाती है। इन प्रकंदो को 0.25 प्रतिशत सेरेन कवकनाशी के घोल में डुबोकर एक दिन छाया में सुखाते है। जमीन में दो मीटर लम्बा, दो मीटर चौड़ा तथा एक मीटर गहरा गड्ढा खोद कर गड्ढो की चारो और दीवार की सतह से लगाकर हल्दी की सुखी पत्तियों को डाल देवें तथा इसमें हल्दी की गाठें भर देवें। भरते समय इस बात का ध्यान रहें कि उपर की तरफ थोड़ी जगह छोड़कर लकड़ी के पतले तख्ते रखें और उसके उपर मिट्टी रखकर लेप कर देवें। लकड़ी के तख्ते व प्रकंदो की परत के मध्य 8–10 से.मी. खाली स्थान छोड़ देते हैं तथा तख्ते में भी हवा के लिए छेद कर दिये जाते है, ताकि प्रकंदो को पर्याप्त मात्रा में हवा मिल सके। इस प्रकार 3 से 5 माह तक हल्दी का बीज सुरक्षित रखा जा सकता है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

वायु प्रदूषणः कारण, प्रभाव एवं नियंत्रण

[1]कुलवीर सिंह यादव, सुनील कुमार मौर्या तथा यादव राम
उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221 005
[1]ई–मेलः kulveer11bhu@gmail.com

प्रस्तावना

वायु प्रदूषण एक ऐसा प्रदूषण है जिसके कारण दिन प्रतिदिन मानव का स्वस्थ्य खराब होता चला जा रहा है और पर्यावरण के ऊपर भी इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। यह प्रदूषण ओजोन परत के क्षरण में मुख्य भूमिका निभा रहा है,जिसकी जिस कारण घर से बाहर निकलते है प्रदूषित वायु का एहसास किया जा सकता है। धुएँ के बादलों को बस, स्कूटर, कार, कारखानो की चिमनियों से निकलता हुआ देख सकते हैं। थर्मल पावर प्लांट से निकलने वाली फ्लाई ऐश (हवा में बिखरे राख के कण) किस प्रकार हवा को दषित कर रहा है, कार की गति रोड पर किस प्रकार प्रदूषण को बढ़ा रही है। सिगरेट का धुआँ भी हवा को प्रदूषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

वायु प्रदूशण

वायुमंडल पृथ्वी का आवरण है। यह भूतल की सभी प्राकृतिक एवं मानवीय घटनाओं का कारण है। हमारे वायुमंडल में विभिन्न प्रकार की गैसें पायी जाती हैं, यथा नाइट्रोजन, आक्सीजन, आर्गन, कार्बन डाईआक्साइड आदि। इसके अलावा जलवाष्प, हाइड्रोजन, हीलियम, ओजोन, क्रिप्टान, नियान तथा जेनान आदि निश्क्रिय गैसें पाई जाती है। जब मानवीय अथवा प्राकृतिक कारणों से गैसों की निश्चित मात्रा एवं अनुपात मे अवांछनीय परिवर्तन हो जाता है या वायु मे इन गैसों के अतिरिक्त कुछ अन्य विषाक्त गैसों या कणिकीय पदार्थ मिल जाते हैं तो उसे वायु प्रदूषण कहते हैं। वायु प्रदूषण के दो मुख्य स्त्रोत हैं– प्राकृतिक एवं मानव जनित स्त्रोत। प्राकृतिक स्त्रोत के अन्तर्गत प्राकृतिक घटनाएं जैसे ज्वालामुखी विस्फोट, वन की आग, वानस्पतिक क्रियायें एवं महासागरीय जीव जन्तुओं आदि से विभिन्न प्रकार की गैसें निर्मित होती है। जैसे

- वन की आग से कार्बन मोनोआक्साइड, कार्बन डाईआक्साइड एवं राखकण आदि।
- ज्वालामुखी उदगार से सल्फर डाइआक्साइड हाइड्रोजन सल्फाइड इत्यादि।
- पेड़ पौधें की दैहिक क्रियायों से अमोनिया, नाइट्रोजन के आक्साइड, मिथेन एवं कार्बन डाइआक्साइड इत्यादि।

वायुमंडलीय रासायनिक क्रियायों द्वारा अम्ल तथा महासागरीय जीव जंतुओं से मिथाइल क्लोराइड आदि उद्भूत होकर वातावरण में प्रसारित होती है। मानव जनित स्त्रोत से उत्पन्न होते जल प्रदूषकों को निम्नलिखित उपवर्गो में बॉटा जा सकता है।

- गैसें एवं धुआँ जो कि लकड़ी, कोयला, उपले तथा पेट्रोलियम पदार्थों को जलाने से उत्पन्न होता है।
- कणिकीय पदार्थ जो कि लकड़ी कोयला तथा पेट्रोलियम पदार्थों के दहन से भी उड़कर वायुमंडल मे चले जाते है ।
- उष्मा जो कि जीवधारियों के श्वसन से तथा ईधनों को जलाने से उत्पन्न होकर वायुमंडल में चली जाती है।

वायु प्रदूषण को उनकी प्रकति के आधार पर निम्नलिखित दो वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है–

1. गैसीय वायु प्रदूषण

गैसीय प्रदूषकों को उनके स्त्रोत के आधार पर निम्नलिखित उपवर्गो मे बॉटा जा सकता है–

- जीवाश्म ईधनों को अर्थात्, खनिज तेल तथा कोयला जलाने से कार्बन डाईआक्साइड तथा कार्बन मोनोआक्साइड निकलती है।
- जीवाश्म ईधन के अपूर्ण दहन से उत्पन्न हाइडोकार्बन।
- एरोसोल कैन तथा रेफ्रीजेरेशन प्रणाली से निस्सत फलोरोकार्बन।
- गंधक युक्त जीवाश्म ईधनों के दहन हुए सल्फर के योगिक जैसे सल्फर डाईआक्साइड, सल्फर टाई आक्साईडर सल्फाइड तथा सल्फयूरिक एसिड आदि।
- उॅचाई पर उड़ने वाले वायुयानो ईधनों के दहन एवं रासायनिक उर्वरकों से निस्सत नाइट्रोजन डाई आक्साइड आदि।
- सूती वस्त्रों के विरंजन तथा अन्य रासायनिक प्रक्रियायों द्वारा विसर्जित क्लोरीन।
- ग्लिसराल या तेल के माप वियोजन से उत्पन्न अल्डेहाइड।
- धान के खेतों तथा जुगाली करने वाले मवेशियों के हवा छोडने से मीथेन गैस उत्सर्जित होती है।

2. कणिकीय वायु प्रदूषण

कणिकीय वायु प्रदूषकों को उनके आकार के अनुसार निम्न उपवर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

1. एरोसोल हवा मे लटके तरल तथा ठोस कणों को एरोसोल कहा जाता है। यह एक माइक्रान से दस माइक्रान आकार वाले कण होते हैं। जिनकी उत्पत्ति ताप बिजली घरों स्वचालित मोटर वाहनों तथा घरों मे जीवाश्म ईंधनों लकडी उपले आदि के दहन के फलस्वरूप होती है।
2. आकार में माइक्रोन से छोटे कणों को धूम्र कालिख तथा वाष्पयुक्त धूम्र की जाती है। उनकी उत्पति भी पूर्णत पदार्थो के दहन के फलस्वरूप ही होती है।
3. दस माइक्रोन से बडे आकार वाले कणों को शुद्ध कणिकीय पदार्थ या धूलि की दी जाती है। इनकी भी उत्पति पूर्णत विभिन्न प्रकार के ईधनों के जलने के फलस्वरूप होती है। अन्तर केवल कणों के आकार का होता है।

विभिन्न वायु प्रदूषक व इनके प्रभाव

कार्बन मोनो ऑक्साइड

यह हवा से भारी, पानी में अघुलनशील, गंध स्वादहीन एवं रंगहीन गैस है, जो मानव के साथ साथ अन्य प्राणियों के लिए अत्यंत हानिकारक हैं। सभी वायु प्रदूषकों मे यह 50 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करता है। इसे दमघोंटू गैस भी कहते हैं। सांस के माध्यम से शरीर मे पहुॅचकर रक्त मे उपस्थित हीमोग्लोबिन की आक्सीजन वहन क्षमता को बिल्कुल कम कर देती हैं, जिसके फलस्वरूप मनुष्य की मत्यु हो जाती है। इस गैस की उत्पति जीवाश्म ईधनों कोयला और खनिज तेल के अपूर्ण दोहन के फलस्वरूप होती है । दबावयुक्त तथा द्रवित गैसों से इस समस्या का निदान काफी सीमा तक किया जा सकता है।

नाइटोजन के ऑक्साइड

रंगहीन एवं गंधहीन नाइट्रिक ऑक्साइड तथा लाल भूरे रंग की तीव्र गंध वाली नाइट्रोजन आक्साइड तथा नाइट्रोजन डाईफिनाक्साइड गैसे नाइट्रोजन के आक्साइड है। वैसे तो नाइट्रोजन पादपों के लिए मुख्य पोषक पदार्थ हैं किन्तु नाइट्रोजन के आक्साइड हानिकारक प्रभाव छोडने है। नाइट्रोजन के आक्साइड वायुमंडल की नमी से प्रतिक्रिया करके नाइट्रिक अम्ल का निर्माण करते हैं जो वर्षा के पानी के साथ अम्ल वर्षा के रूप मे धरती पर आ जाता है। यह अम्ल वर्षा समस्त जीवधारियों कें लिए अत्यंत हानिकारक है। नाइट्रोजन के आक्साइड की उत्पति खनिज तेलों व कोयले के जलाने से होती है। मनुष्य के शरीर मे नाइट्रिक आक्साइड के अधिक सान्द्रण के कारण से वह कई रोगों से ग्रसित हो जाता है जैसे मसूड़ो से सूजन, रक्त, स्राव, निमोनिया तथा फेफड़े का कैंसर आदि। अधिक उॅचाई पर उडने वाले सुपरसोनिक नेट विमानों से निकली हुई नाइट्रोजन

आक्साइड समताप मंडल में ओजोन की पर्त को पतला करती है जिसके फलस्वरूप धरातल पर अधिक पराबैंगनी किरणों के आने का खतरा उत्पन्न होता है।

सल्फर के ऑक्साइड

सल्फर डाइ ऑक्साइड वायु प्रदूषण का द्वितीय सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रदूषण है वायु मे समस्त वायु प्रदूषक के सकल भार का लगभग 20 प्रतिशत भाग सल्फर डाइ ऑक्साइड का होता है। सल्फर डाइ ऑक्साइड के मानव जनित स्त्रोतों में प्रमुख है जैसे ताप शक्ति गृह कोयला, खनिज तेल शोधनशालाएं तथा स्वचालित वाहन। ये तीनो स्त्रोत सम्मिलित रूप से होने वाले वायु के सल्फर डाइ ऑक्साइड द्वारा प्रदूषण में 50 प्रतिशत योगदान करते है। सल्फर डाइ ऑक्साइड से आखां में जलन, दमा, खासी, फेफड़ों के रोग तथा सर में चक्कर आना और सांस लेने में कठिनाई जैसी परेशानी बढ़ जाती है। सल्फर डाइ ऑक्साइड को क्रैकिंग गैस भी कहते है क्योकि यदि यह लगातार पत्थर पर प्रवाहित की जाए तो वह क्षत विक्षत हो जाता है।

क्लोरो फ्लूरो कार्बन

ये क्लोरीन, फ्लोरिन तथा कार्बन तत्वों के साधारण यौगिक है स्प्रे कैन्स, एयर कंडीशनर, रेफ्रिजरेटर, फोम प्लास्टिक, अग्नि शामक तथा प्रसाधन सामग्री आदि से क्लोरो फ्लूरो कार्बन के उत्सर्जन एवं उनके वायु में पहुंचने के कारण समताप मंडलीय ओजोन गैस तथा परत का क्षय प्रारम्भ हो जाता है फलतः सूर्य की पराबैंगनी किरणें अधिक मात्रा में धरातलीय सतह पर पहुंचने लगती है जिसके फलस्वरूप तापमान में वृद्धि के कारण कई प्रकार के पर्यावरणीय परिवर्तन घटित होने लगते है।

कार्बन डाई आक्साइड

यह एक महत्वपूर्ण संसाधन है क्योकि हरे पौधे कार्बन डाई आक्साइड की सहायता से प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा अपना आहार निर्मित करते है किन्तु का जब वायु मंडल में इसका सांद्रण बढ़ जाता है तो अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। दो प्रमुख कारणों के फलस्वरूप वायुमंडल में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा तेजी से बढ़ती जा रही है। यथा

1– बढ़ती दर से जीवाश्म के दहन के कारण कार्बन डाई आक्साइड का अधिकाधिक मात्रा में वायुमंडल में विमोचन

2– तीव्र गति से वन विवरण के कारण वन में हास होने के कारण कार्बन डाई आक्साइड के उपयोग में निरंतर कमी

वायुमंडल में कार्बन डाई आक्साइड के सांद्रण में वृद्धि होने से हरित गृह प्रभाव में वृद्धि होती है फलतः वर्षा तथा मृदा नमी में कमी, महासागरीय जल की अम्लता में वृद्धि, हिम चोटियों एवं महाद्वीपीय हिमनद का पिघलना आदि विनाशकारी घटनाएं घटित हो रही है ज्ञातव्य है कि ग्रीन हाउस गैसों द्वारा होने वाले वैश्विक तापन में लगभग 40 प्रतिशत के लिए कार्बन डाई आक्साइड ही जिम्मेदार है।

मिथेनः– मिथेन गैस वायुमंडल के हरितगृह प्रभाव में 20 प्रतिशत वृद्धि करती है। इनके उत्पादन के मुख्यतः दो स्त्रोत है। धान के खेत, कोयले की खदाने एवं घरेलू पशु वातावरण में मिथेन के मानवीय स्त्रोत है जबकि आर्द्र भूमि एवं समुद्र जलीय मिथेन उत्सर्जन के प्राकृतिक स्त्रोत है समताप मंडल में मिथेन का सांद्रण अधिक होने से जलवाष्प में वृद्धि होती है जो कि हरित गृह प्रभावोत्पादक होती है इस कारण निचले वायुमंडल व धरातल पर ताप वृद्धि होती है।

सीसाः– सीसा, औधोगिक गतिविधियों के फलस्वरूप उत्सर्जित धूल के रूप में वायुमंडल में व्याप्त हो जाता है। यह सीसा वायुमंडल की आक्सीजन से मिलकर लेड आक्साइड बनाता है जो श्वास के द्वारा शरीर में पहुंचकर तंत्रिका तंत्र पर हानिकारक प्रभाव डालता है। जिससे मस्तिष्क सम्बन्धी बीमारियां तथा गुर्दो व अन्य अंगो को नुकसान पहुँचता है।

बेंजीनः– सीसा के अभाव में उचित आवंटन मान प्राप्त करने के लिए पेट्रोल में कुछ सुवासित यौगिक जैसे बेंजीन, टाल्युन, जाइलम मिला दिए जाते है इन सुवासित यौगिकों के दहन के फलस्वरूप बहुचक्रीय सुवासित

हाइड्रोकार्बोन और निलंबित कण पदार्थ उत्सर्जित होते है। इन में सर्वाधिक मात्रा में बेंजीन की होती है जो अत्यधिक कैंसर कारक होता है जो कि रक्त कैंसर का कारक भी हो सकता है।

कैडमियमः– कैडमियम के कण श्वासन विश की तरह कार्य करते है ये हृदय सम्बन्धी रोग उत्पन्न करते है।

वायु प्रदूषण का प्रभाव

1– ओजोन परत का छरणः– ऐसे रसायनो में क्लोरो फ्लोरो कार्बन, क्लोरीन एवं नाइट्रस आक्साइड प्रमुख है ओजोन परत में छिद्र हो जाने के कारण सूर्य की हानिकारक पराबैगनी किरणें और रेडियो विकिरण धरती तक पहुंच जाते है तथा जीव, जन्तुओ एवं वनस्पतियो पर अपना कुप्रभाव छोड़ते है।

2– अम्ल वर्षाः– विभिन्न उद्योगों की विविध उत्पादन प्रक्रियाओं से निकली कार्बन डाइ आक्साइड, सल्फर डाइ आक्साइड तथा नाइट्रिक आक्साइड जैसी गैसें जब चिमनियों से निकलकर वायुमंडल में जाती है तो वह जलवाष्प से मिलकर क्रमशः कार्बोनिक अम्ल, सल्फ्यूरिक अम्ल तथा नाइट्रिक अम्ल बनाते है। यह गैसें परम्परागत ईंधन के दहन के फलस्वरूप तथा वाहनों द्वारा धुएं के रूप में निकलकर वायुमंडल में जाकर मिलती है। वर्षा के साथ यह अम्ल पृथ्वी पर आ जाते है और इसे ही अम्लीय वर्षा कहते है।

3– प्रकाश रासायनिक धूम्र कोहराः– औद्योगिक इकाइयो से निस्तरित धुँआ तथा कुहरे के संयोग से धूम कोहरे का निर्माण होता है इस धुंध में विद्यमान वाष्पयुक्त वर्षा की बूंदो को छोटा कर देते है और प्रायः बदलो से वर्षा कम होती है इस कारण ये पूरे वायुमंडल में छाये रहते है यह धुंध इतनी घनी होती है की सूर्य की किरणे भी धरती पर कम पहुंच पाती है जब धूम कोहरे के साथ वायु के प्रदूषक का मिश्रण हो जाता है तो वह मानव के साथ साथ सभी के लिए घातक हो जाते है।

वायु प्रदुषण का स्वास्थ्य पर प्रभाव

वायु प्रदुषण का दूषित प्रभाव निम्न रूप से आंका जा सकता है–

पदार्थो पर प्रतिकूल प्रभाव

वायु प्रदूषण का प्रतिकूल प्रभाव न केवल जीव जन्तुओं पर ही पड़ता है, अपितु विभिन्न प्रकार के पदार्थो जैसे धातु, भवन, पेन्ट, चमड़ा, कागज तथा कपड़े इत्यादि पर भी पङता है। हवा में सल्फर डाइ ऑक्साइड, नाइटोजन डाइ आक्साइड तथा कार्बन डाई आक्साइड हाइड्रोकार्बोन आदि गैसों की उपस्थिति तथा आर्द्रता के कारण धातु की चीजों में जंग लगाने की अधिक सम्भावनाएं रहती है।

जीवों पर वायु प्रदूषण का प्रतिकूल प्रभाव

भोपाल गैस त्रासदी जैसी दुर्घटना में हजारों मनुष्यों के साथ साथ पशु पक्षी भी बहुत संख्या में मरे थे। वायु प्रदूषण के रूप में लेड आर्सेनिक कोबाल्ट आदि पदार्थ जीवधारियों के क्रिया तंत्र में प्रतिकूल प्रभाव डालते है जिससे उनको स्वास्थ्य सम्बन्धी कष्ट तो होते ही है एवं उनकी मृत्यु हो जाने की भी सम्भावनाएं रहती है।

वनस्पतियों पर वायु प्रदूषण का दुष्परिणाम

अन्य जिवधारियों की तरह पेड़ पौधे भी सॉस लेते है तथा इन्हे भी शुद्ध वायु की आवश्यकता होती है। प्रदुषण पदार्थ पत्तियों पर जम जाते है और पत्तियों के रंध्र बंद हो जाने से वाष्पोत्सर्जन क्रिया भी रुक जाती है। सल्फर और नाइट्रोजन के कारण पत्तियां पीली होकर धीरे धीरे गिर जाती है।

मानव स्वास्थ्य पर कुप्रभाव

वायु प्रदूषण के कारण सिर दर्द खासी तपेदिक अस्थमा इत्यादि रोग से अनेक लोग पीड़ित होते है। वायु प्रदूषण का कुप्रभाव मुख्यतः श्वास सम्बन्धी बीमारियों पर पड़ता है। फेफड़े में श्वसन द्वारा गैस, कण, रसायन इत्यादि पहुंचने से फेफड़ा नष्ट हो जाता है। इसके अलावा मनुष्यो में कष्टकारी स्नायुविक दुर्बलता, आँखों में कष्ट तथा सुगंध के प्रति असुधवनी प्रतिक्रिया आदि होने लगती है।

वायु प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

वायु प्रदूषण मुख्य रूप से मानव जनित समस्या है मानव की विकासशील प्रवृत्ति के कारण औद्योगीकरण एवं नगरीकरण बढ़ रहा है जिस कारण विभिन्न प्रदूषक उत्सर्जित होकर वायुमंडल की अन्य गैसों

को प्रदूषित कर रहे है। भूमण्डल का जैविक अजैविक तंत्र प्रभावित हो रहा है। वायु प्रदुषण हेतु निम्नलिखित उपायों को अपना कर स्थिति में सुधार लाया जा सकता है–

- समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों को वायु प्रदूषण से उत्पन्न होने वाले घटक परिणामो से अवगत कराया जाए।
- वर्तमान वायु प्रदूषण के स्तरो की जांच के लिए व्यापक सर्वे सर्वेक्षण तथा अध्ययन किया जाना चाहिए तथा प्रदुषण की नियमित मानिटरिंग की जानी चाहिए।
- ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाए जैसे जैव द्रव ऊर्जा, सौर ताप ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, पवन ऊर्जा तथा जल विद्युत ऊर्जा आदि।
- स्वचालित वाहनों में यथासम्भव पेट्रोल के स्थान पर प्राकृतिक गैस का प्रयोग किया जाए।
- डीजल की गाड़ियों में अति सूक्ष्म यांत्रिक सल्फर युक्त डीजल या हरित डीजल का प्रयोग किया जाए।

संदर्भ

भार्गव, एस.एन. 2007. प्रर्यावरण. *क्षितिज प्रकाशन*, वाराणसी, पृष्ठ 1–14.

http://hindi.indiawaterportal.org/node/55570 ;

कुमार, आर. वायु प्रदूषण और मानव जीवन. हिन्दी युग्म.द्ध

http://hindi.indiawaterportal.org/node/55570 1/5

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

दियारा भूमि के तहत ककड़ी सब्जियों की खेती

विकास कुमार, मो. रमजान एवं तेजांगूले अंगामी
उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय (केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय) पासीघाट (पूर्वी सिआंग)
अरुणाचल प्रदेश–७६११०२

परिचय

नदियों के दोनों किनारों से लगी भूमि जो की वर्षा ऋतु में बाढ़ के पानी में डूब जाती है और वर्षा समाप्त होने पर पानी उतरते ही दिखाई देने लगती है दियारा भूमि कहलाती है इस प्रकार की भूमि में खेती करने को दियारा खेती कहतें है। नदी के किनारों या नदी घाटियों पर ककड़ी वर्गीय सब्जियों और फलों को उपजना एक अलग प्रकार की खेती है जो बहुत पुराने समय से की जाती रही है। आम तौर पर यह भूमि केवल एक छोटी अवधि के लिए उपलब्ध होती हैं, और भूमिहीन, छोटे और सीमांत किसान मौसमी सब्जियों और फलों को इन भूमि पर उगाकर बाजार में बेचते हैं। दियारा भूमि मुख्य रूप से ककड़ी वर्गीय सब्जियॉ उगाने के लिए उपयुक्त है। बरसात के मौसम में हर साल प्राप्त ताजा गाद और जमी मिट्टी इस भूमि को ककड़ी फसलों को उगाने के लिए उपयुक्त बनाते हैं। ककड़ी सब्जियॉ उप सामान्य परिस्थितियों में, सचमुच रेत पर, नवम्बर–फरवरी (सर्दियों) के महीनों में, विशेष रूप से उत्तर और उत्तर–पश्चिमी भारत में उगाई जाती हैं। ककड़ी वर्गीय सब्जियों के कुल बुआई क्षेत्र का ६५ प्रतिसत नदी के किनारों के अंतर्गत आता है।

दियारा खेती के लाभ

दियरा क्षेत्र में खेती करने के कई लाभ है, जैसेः–

- प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक मुनाफा,
- कम समय में अधिक पैदावार,
- सिंचाई में आसानी,
- खेती की कम लागत,
- उच्च प्रजनन की वजह से कम खनिज की आवश्यकता,
- खरपतवार की सीमित वृद्धि,
- आसान शस्य क्रियाओं द्वारा कीट और रोग का नियंत्रण,
- कम लागत श्रम की सुविधा।

दियरा खेती के लिए उन्नत किस्मेंः– दियरा भूमि पर खेती पारंपरिक किस्मों और तरीके से किया जाना आज भी जारी है। लौकी, करेला, ककड़ी, तोरई आदि में से कई उन्नत किस्मों विभिन्न अनुसंधान संस्थानों द्वारा विकसित किया गया है, लेकिन अभी तक दियरा भूमि पर इसके उपज का मूल्यांकन उचित ढंग नहीं किया गया है।

फसल पद्धतिः– आम तौर पर नदी के किनारों में लौकी, करेला, ककड़ी और चिकनी तुरई उत्तर भारत में, नसदार तुरई राजस्थान, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में तथा परवल की खेती बिहार में की जाती है।

दियरा मिट्टीः– दियरा छेत्र में सुखी बलुई मिट्टी ककड़ी वर्गीय सब्जियों की खेती के लिए अच्छी मानी जाती है। अच्छी उपज के लिए यह भी आवश्यक है कि मिट्टी उपजाऊ हो और उसमे पर्याप्त मात्रा में जैविक तत्त्व भी होने चाहिए ।

गड्ढे का आकर और बनाने का समयः– बुआई के लिए गड्ढो को अक्टूबर– नवंबर के महीनो में बनाया जाता है। इस समय तक मानसून समाप्त हो जाता है तथा नदियों का जल स्तर भी काम हो जाता है। आम तौर पर गड्ढो का आकर ५०–६० सेमी चौड़ा और ४५–६० सेमी गहरा होना चाहिए। गड्ढे बनाने के बाद इसे सड़ी हुई गोबर, केचुआ खाद या किसी अन्य जैविक खाद को मिट्टी में मिलाकर करीब तीन चौथाई भर देना चाहिए।

खाद और उर्वरको की मात्राः– आमतौर पर दियारा कृषि में एक ही फसल ली जाती है, इसीलिए इसमें मुख्य रूप से जैविक खाद जैसे कि सड़ी हुई गोबर, केचुआ खाद या कम्पोस्ट का प्रयोग किया जाता है। नदी कि गाद का भी प्रयोग किया जाता है जो की पौधों कि जड़ों में नमी बनाये रखता है। अधिक उपज कि लिए आजकल उर्वरको का भी प्रयोग किया जाने लगा है। इसके लिए ४० ग्राम नत्रजन, २० ग्राम फॉस्फोरस एवं २० ग्राम पोटाश प्रति पौध के हिसाब से दिया जाता है। फॉस्फोरस एवं पोटाश कि पूरी मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा बुआई की समय देनी चाहिए। नत्रजन की शेष आधी मात्रा बुआई के ३०–४० दिन के बाद देनी चाहिए।

बीज दर, बीज उपचार और रोपाई का समयः– बीज दर भिन्न–भिन्न फसलों के लिए अलग अलग होता है। खीरा के लिए २–३ किग्रा. करेला एवं लौकी के लिए ४–५ किग्रा. और तोरई के लिए ३ किग्रा. प्रति हैक्टर बीज की आवश्कता होती है। आमतौर पर बीजो की बुआई अगेती फसलों के लिए नवंबर के पहले और दूसरे सप्ताह में तथा पछेती फसलों की बुआई जनवरी के पहले सप्ताह में की जाती है। बीज ३ से ४ सेमी की गहराई पर गड्ढो में ४५–६० सेमी की दूरी पर बोया जाता है। दो बीज आम तौर पर एक स्थान पर बोया जाता है। यदि बुआई के समय तापक्रम कम हो तो पूर्व अंकुरित बीज के बोने से उचित अंकुरन होता है। बीज की बुआई करने से पहले बीज का उपचार करना बहुत ही लाभकारी होता है । इसके लिए थाइरम २ ग्राम और कार्बेन्डाजिम ५० प्रतिसत घुलन चूर्ण की मिश्रण को २ ग्राम प्रति किलो बीज से उपचारित करना चाहिए।

सिंचाईः– अधिकांश ककड़ी कुल की फसलों की जड़ें काफी गहरी होती है जो की इसे दियारा भूमि कृषि के लिए उपयुक्त बनाती है। बुवाई के समय मिट्टी में नमी का होना अंकुरन के लिए लाभदायक होता है। अगर लंबे समय तक वर्षा न हो तो ७–१० दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधनः– लता की वृद्धि की प्रारंभिक अवस्था में निराई–गुड़ाई करने से पौधों का अच्छा विकास होता है और फलन भी अधिक होता है। लता की पूर्ण वृद्धि हो जाने पर बड़े–बड़े खरपतवारों को हाथ से उखाड़ देना चाहिए। खरपतवार नाशक का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि यह नदी के बहते पानी के साथ मिश्रण कर सकता हैं और मानव पशु और मछलियों आदि के लिए खतरनाक साबित हो सकता है।

फलों की तुड़ाई एवं उपजः– फलों की छोटी अवस्था से ही तुड़ाई करना आवश्यक होता है अन्यथा फल कठोर हो जाते है जिसके कारण फलो के गुणों में कमी आ जाती है और बाजार भाव भी कम मिलता है। आमतौर पर फसल बुवाई के दो माह बाद तैयार हो जाती है फसल तैयार हो जाने पर २–३ दिन के अंतर पर २ माह की अवधि तक तोड़े जा सकते है।

फसल की अवधि और दियारा भूमि में ककड़ी वर्गीय सब्जियों की उपज

क्र.सं.	सब्जियां	रोपण समय	तुड़ाई का समय	औसत उपज (क्यू/हेक्टेयर)
१	लौकी	नवम्बर–दिसम्बर	मार्च–जुलाई	२००–३५०
२	करेला	फरवरी–मार्च	मई–जुलाई	१००–१५०
३	परवल	नवम्बर–दिसम्बर	मार्च–जुलाई	३५०–४००
४	नसदार तोरई	अप्रैल–मई	जून–जुलाई	१००–२००
५	चिकनी तोरई	अप्रैल–मई	अप्रैल–मई	१००–२००
६	खीरा	अप्रैल–मई	मार्च–जून	२२५–२५०

कीट एवं रोग नियंत्रण

फल की मक्खी (फ्रूट फ्लाई):– यह मक्खी फलों में प्रवेश कर जाती है और वहीँ पर अंडे देती है। अण्डों से सुंडी बाहर निकलती है वह फल को बेकार कर देती है।

रोकथाम

- नियंत्रण हेतु प्रभावित फलो को तोड़कर भूमि में गहरा गाड़ कर नष्ट कर दें।
- मैलाथियान ५० ई. सी. या डाइमिथायन ३० ई. सी. १ मिली लीटर का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करे।
- आवशयकतानुसार १४– १५ दिन बाद छिड़काव को दोहराना चाहिए।

बरुथी (माइटस):– पत्तियों की निचली सतह पर रहकर रस चूसती हैं। इससे पत्तियों पर सफेद धब्बे बन जाते हैं जो बाद में भूरे रंग के हो जाते हैं।

रोकथाम

- नीम की निम्बोली के ५ प्रतिशत का छिड़काव करे।
- नीम आधारित कीटनाशक जैसे निर्माक ०.५ प्रतिशत या रीपेलिन १. ० प्रतिशत या मर्गोसाइड ०. १ प्रतिशत का छिड़काव करें।
- डाइकोफाल ०.०४ प्रतिशत का छिड़काव करें।

लाल भृंगः– यह कीट लाल रंग का होता हैं तथा अंकुरित एवं नई पतियों को खाकर छलनी कर देता हैं। इसके प्रकोप से कई बार फसलें पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं।

रोकथाम

- नियंत्रण हेतु कार्बोरील ५ प्रतिशत चूर्ण का २० किलो प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करे या एसीफेट ७५ एस. पी. आधा ग्रामध लीटर पानी की दर से छिड़के एवं १५ दिन के अंतर पर दोहराना चाहिए।

तुलसिता (डाउनी मिल्ड्यू):– पत्तियों की ऊपरी सतह पर पिले धब्बे दिखाई देते हैं और नीचे सतह पर कवक की वृद्धि दिखाई देती हैं। उग्र अवस्था में रोग ग्रसित पत्तिया झड़ जाती हैं।

रोकथाम

- नियंत्रण हेतु मेंकोबेज २ ग्रामध्लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।
- आवशयकता पड़ने पर इस छिड़काव को १५ दिन बाद दोहराना चाहिए।

छाछ्या (पाउडरी मिल्ड्यू):– रोग ग्रसित बेलो पर सफेद चूर्णी धब्बे दिखाई देते हैं। रोग ग्रस्त पत्तियों एवं फलो की बढ़वार रुक जाती हैं और बाद में सुख जाते हैं।

रोकथाम

- नियंत्रण हेतु मेंकोबेज या जाइनेब २ ग्राम या जाइरम २ मिली. प्रति लीटर मिलाकर छिड़के। आवशयकता पड़ने पर इस छिड़काव को १५ दिन बाद दोहराना चाहिए।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

प्याज का सुरक्षित भण्डारण

सुरेश कुमार तेली, शशि, विकाश कुमार और एम. आर. चौधरी

प्याज मध्यम व छोटे किसानों द्वारा उगाई जाने वाली राज्य की व्यावसायिक सब्जियों में मुख्य फसल है। प्याज मूलतः रबी मौसम में उगाया जाता है इसलिए वर्ष भर आपूर्ति बनाये रखने के लिए इसका भण्डारण आवश्यक हो जाता है। राज्य के कुल प्याज उत्पादन का 85 से 90 प्रतिशत अप्रैल– मई में निकाला जाता है, जबकि शेष 10–15 प्रतिशत दिसम्बर – जनवरी में निकाला जाता है। जून से अक्टूबर तक प्याज निकालने का समय नहीं होता है। इसलिए इस दौरान प्याज की उपलब्धता बनाये रखने तथा अप्रैल– मई के दौरान मूल्यों में गिरावट रोकने के लिए प्याज का भण्डारण आवश्यक हो जाता है। सामान्यतया खरीफ मौसम में प्याज की उत्पादकता कम होती है तथा प्रतिकूल मौसम के कारण फसल खराब हो जाती है। इसलिए कभी–कभी जून से फरवरी तक भण्डारित प्याज पर निर्भर रहना पडता है।

भण्डारण को प्रभावित करने वाले कारकः– प्याज के भण्डारण पर ज्यादातर ध्यान उनकी खुदाई के बाद दिया जाता है। लेकिन कई ऐसे कारक है जिनका ध्यान प्याज की रोपाई से ही रखना चाहिए। इन कारकों में किस्म का चुनाव, उर्वरक एवं जल प्रबन्धन, कन्दों को निकालने का समय आदि प्रमुख ळें।

- आर.ओ.–1, आर.ओ.–59 (अर्पिता) , आर. ओ. 252 (स्वाती) , एन 2–4–1 , एग्रीफाउण्ड लाइट रेड और अर्का निकेतन प्याज किस्में 4–5 महीने तक बिना किसी अधिक नुकसान के भण्डारित की जा सकती है।
- अधिक से अधिक मात्रा में गोबर की खाद (20–25 टन प्रति हैक्टर) या वर्मी कम्पोस्ट खाद देनी चाहिए। प्याज को अतिरिक्त मात्रा में पोटाश (50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर) तथा गन्धक (50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) देने से भण्डारण क्षमता में वृद्वि होती है।
- खुदाई से 7–8 दिन पहले सिंचाई बन्द कर देना चाहिए।
- जब 59 प्रतिशत पौधे गिरने लगे तो प्याज उखाड़ने का कार्य किया जा सकता है।
- खुदाई के बाद प्याज को खेत पर ही पत्तियों सहित सूखाना चाहिए।
- 5.5–7.5 सेमी व्यास वाले कंदों का भण्डारण अच्छा होता है।
- प्याज के भण्डारण के लिए 25–30 सेन्टीग्रेड तापमान व 65–70 प्रतिशत आर्द्रता सर्वोत्तम पाई गई है।

भण्डारण की सरंचना : वातावरणीय दशाओं पर प्याज भण्डारण के लिए मुख्यतया एक गाले (ढ़ेरी) तथा दो गोलों (ढेरियों) वाले भण्डारगृह बनाये जाते हैं। एक गाले वाले भण्डारगृह उत्तर से दक्षिण दिशा में तथा दो गाले वाले भण्डारगृह पूर्व से पश्चिम दिशा में बनाये जाते हैं। भण्डारगृहों की लम्बाई 50 फुट से अधिक नहीं होनी चाहिए । फर्श को हवादार बनाने के लिए तथा दीवारों से हवा के आदान–प्रदान को बनाये रखने के लकड़ी या बॉस की पट्टियों का प्रयोग करना चाहिए। भण्डारगृह का निर्माण ऊँचे स्थान पर करना चाहिए जिससे हवा का आदान–प्रदान अच्छा हो सके। निर्माण स्थान के आसपास पानी इकट्ठा नहीं होना चाहिए तथा झाड़–फूस नहीं होने चाहिए ।

आदर्श प्याज भण्डारगृह :

- **हवादार फर्श युक्त एक गाले वाले भण्डारगृह :** एक गाले वाले भण्डारगृह का निर्माण उत्तर–दक्षिण दिशा मे करना चाहिए। पूर्व–पश्चिम की दिशा मे बनाये गए एक गाले वाले भण्डारगृहों में हवा का पर्याप्त आदान–प्रदान नहीं होता है। जिससे कन्द अधिक सड़तें है।
- **हवादार फर्श तथा रोशनदान युक्त भण्डारगृह** : प्रस्तुत एक या दो गाले वाले भण्डारगृहों में भण्डारण नुकसान पारम्परिक भण्डारगृहों से कम होते हैं। परन्तु मई– जून में गर्म हवाओं तथा जून से सितम्बर

तक आर्द्र हवाओं के सीधे सम्पर्क में आने से क्रमशः वजन में कमी तथा सड़ने से अधिक नुकसान होते हैं। क्योंकि ताप तथा नमी के नियंत्रण का कोई उपाय नहीं होता है। इन कारकों पर नियंत्रण के लिए एक नये प्याज भण्डारगृह की रचना अनुसंधानों के आधार पर की गयी। इसका मूल फर्श हवादार रहता है परन्तु दीवारें बॉस के ऊपर मिट्टी का प्लास्टर लगाकर बनायी जाती है। इन दीवारों में पश्चिम की ओर दीवार में निचली तरफ 1 फुट का तथ पूर्व की ओर की दीवार के ऊपरी तरफ 1 फुट चौड़ा रोशनदान रखा जाता है। जिससे हवा का आदान–प्रदान हो सके। गर्म तथा आर्द्र मौसम में हवा के प्रवेश के नियंत्रण के लिए पश्चिम की ओर की दीवार के खुले भाग पर दरवाजे लगाये जाते हैं। जिससे भण्डारगृह के तापमान तथा आर्द्रता का नियमन होता है। साथ ही साथ मिट्टी की दीवारें भी तापमान तथा आर्द्रता को नियत्रित करने मे ंसहायता करती है। अधिक गर्म तथा आर्द्र क्षैत्रों के लिए भण्डारगृह उपयोगी सिद्व हो सकते हैं।

- **शीतगृह :** 0 कम तापमान (0–2 सेन्टीग्रेड) तथा 65–70 प्रतिशत आर्द्रता वाले वातारण में प्याज 8–10 महीने तक टिके रहते है।

- **सार्वजनिक भण्डार गृह :** एक वर्ष प्याज पैदा न करने वाला किसान, अगले वर्ष भी प्याज उगाये, ऐसा किसान, विशेषतः लघु व सीमान्त किसान, भण्डारगृह बनाने में रूचि नहीं रखता है। भण्डारण की सुविधा नहीं होने कारण वे अपना प्याज बाजार में औने–पौने भावों में बेचने पर मजबूर हो जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में सार्वजनिक भण्डारगृह उपयुक्त प्रतीत होते हैं। सामुदायिक भण्डारगृह की रचना अलग प्रकार से की जानी चाहिए। इस प्रकार के भण्डारगृह बहुमंजिले होते है। इससे प्रत्येक तल पर हवा के आदान–प्रदान के लिए 1 फुट की जगह छोड़ी गयी है। प्याज उत्पादन संघ बनाकर गांवों या तहसील मुख्यालयों पर सार्वजनिक भूमि में इस प्रकार के भण्डारगृह बनाये जा सकते हैं जिन्हें किसानों को नाममात्र के किराये पर दिया जा सकता है। इस प्रकार के उपक्रम के लिए राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एंव विकास प्रतिष्ठान, राष्ट्रीय कृषि व ग्रामीण विकास बैंक, विपणन विभाग आदि कम ब्याज पर कर्ज एंव अनुदान देते हैं। इससे प्याज की कीमतों में उतार चढ़ाव को नियत्रित किय जा सकता है।

भण्डारगृहों की क्षमता तथा माप की गणना :

सामान्यतया एक घनमीटर क्षेत्र में 600 कि.ग्रा. प्याज भण्डारित किया जा सकता है। एक ढ़ेरी की लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊॅचाई क्रमशः 50 फुट 4 फुट तथा 5 फुट से अधिक नहीं होनी चाहिए । राजस्थान की जलवायु के लिय बॉस से निर्मित एक मंजिल व दो मंजिल प्याज भण्डारगृह सबसे उपयुक्त है जिनमें प्याज को लगभग 4 से 5 माह तक बहुत ही कम नुकसान पर भण्डारित करके रखा जा सकता है।

भण्डारगृह की क्षमता			
विवरण	**5 टन क्षमता (खपरैल वाला**	**10 टन क्षमता (खपरैल वाला)**	**कम लागत वाला 5 टन क्षमता**
अ. माप			
भण्डारगृह की दिशा	**उत्तर–दक्षिण**	**उत्तर–दक्षिण**	**उत्तर–दक्षिण**
लम्बाई (फुट)	15.0	30.0	15.0
चौड़ाई (फुट)	4.0	4.0	4.0
दीवारों की ऊॅचाई (फुट)	5.0	5.0	5.0
मध्य की ऊॅचाई (फुट)	7.5	7.5	7.5
छत की लम्बाई (फुट)	6.0	6.0	6.0
जमीन से हवादार फर्श की ऊॅचाई (फुट)	1.0	1.0	1.0
भण्डारण क्षमता (घन मीटर)	9.0	9.0	9.0
भण्डारण क्षमता (फुट)	5.0	10.0	5.0
जीवन काल (वर्ष)	20.0	20.0	5.0

ब. निर्माण सामग्री			
छत	खपरैल या सीमेन्ट की चादरें	खपरैल या सीमेन्ट की चादर	सरकन्डा या गन्ने की पत्तियां
दीवारें	बॉस या लकडी की पटिटया	बॉस या लकडी की पटिटया	बॉस की पटिटया
हवादार फर्श	– तदैव –	बॉस की पटिटयाँ	बॉस की पटिटय
खम्बे / ढॉचा	लोहे के चैनल	लोहे के चैनल	मोटे बाँस जिन्हें लोहे की छोटी पट्टियों का सहारा दिया हो ।

हवादार फर्श तथा रोशनदान युक्त भण्डारगृह के निर्माण हेतु जानकारी

विवरण	**30 टन क्षमता**
अ. माप	
भण्डारगृह की दिशा	उत्तर–दक्षिण
लम्बाई (फुट)	30.0
चौडाई (फुट)	12.0
रास्ते की चौडाई (फुट)	4.0
दीवारो की ऊॅचाई (फुट)	6.0
मध्य की ऊॅचाई (फुट)	10.0
जमीन से हवादार फर्श की ऊचाई (फुट)	1.0
भण्डारण क्षमता (घन मीटर)	40.0
भण्डारण क्षमता (टन)	30.0
जीवनकाल (वर्ष)	20.0
ब. निर्माण सामग्री	
छत	सीमेट की चद्दर
दीवारें	बॉस की पटिटयों पर मिट्टी का प्लास्टर
हवादार फर्श	लकड़ी की पट्टिया
खम्बे / ढ़ॉचा	सीमेन्ट के खम्बे या लोहे के चैनल

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

समन्वित खरपतवार प्रबन्धन

विजय लक्ष्मी यादव[1] व शिल्पा कुमारी[2]
[1]एम.एस.सी छात्रा, शस्य विज्ञान विभाग, कृषि विष्वविद्यालय, मंडोर, जोधपुर
[2]एस,आर.एफ., उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि विष्वविद्यालय, मंडोर, जोधपुर

बढ़ती हुई जनसंख्या के समानान्तर खाद्यानों के उत्पादन में वृद्धि को गति देने हेतु कीड़ों, बीमारियों तथा खरपतवारों से फसलों के उत्पादन में होने वाली क्षति को कम करना अत्यन्त आवश्यक है। खरपतवारों से होने वाली क्षति खरपतवारों के प्रकार, फसल, मौसम तथा फसल खरपतवार प्रतियोगिता की अवधि आदि पर भी निर्भर करती है।

अतः उचित समय पर उचित ढ़ंग से खरपतवार नियंत्रण करना अत्यन्त आवश्यक है। रबी एवं खरीफ फसलों में पाये जाने वाले प्रमुख खरपतवारों के प्रभावशाली नियंत्रण के लिए उनकी प्रकृति तथा प्रकारों का ज्ञान अति आवश्यक होता है। खरीफ एवं रबी के मौसम में पाये जाने वाले प्रमुख खरपतवार निम्नानुसार हैः–

अ.खरीफ	
घास जाति वाले खरपतवार	*एकिनोक्लोवा कोलोन, एकिनोक्लोवा क्रुसगेली* (संवा), *साईनोडोन डेक्टाइलोन* (दूब घास)
चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	*ट्राइयन्थेमा पोर्चुलाकास्ट्रम, ट्राइन्थेमा मोनोगायना* (पत्थर चट्टा), *इक्लिप्टा एल्बा* (भांगरा), *कोमेलिना बैंघालेन्सिस* (कनकवा), *पार्थेनियम हिस्टेराफोरस* (गाजर घास)
ब.रबी	
घास जाति वाले खरपतवार	*फेलेरिस माइनर* (गुल्ली–डण्डा), *एविना ल्यूडोविसियाना* (जंगली जई), *पोय एनुआ* (ब्लू ग्रास), *साईनोडोन डैक्टाईलोन* (दूब घास)
चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	*चिनोपोडियम एल्बम* (बथुआ), *चिनोपोडियम मुरैल* (खतवा), *मेलीलोटस इण्डिका* (सैंजी), *सिरसियम अर्वेन्स* (कंटीली), *कॉन्वोल्यूलस अर्वेन्सिस* (हिरनखुरी), *एनागेलिस अर्वेन्सिस* (कृष्णनील), *फ्यूमेरिया पर्वीफ्लोरा* (वनसोया)

कब करें खरपतवार नियंत्रण–

खरपतवारों के प्रकोप के कारण होने वाली हानि की सीमा कई बातों पर निर्भर करती है। फसलों में किसी भी अवस्था में खरपतवार नियंत्रण करना समान रूप से आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं होता है। इसलिए प्रत्येक फसल के लिए खरपतवार की उपस्थिति के कारण सर्वाधिक हानि होने की अवधि निर्धारित की गयी है। इस अवस्था/अवधि को क्रान्तिक अवस्था कहते है। अतः समय पर खरपतवार नियंत्रण के लिए प्रत्येक फसल के लिए क्रान्तिक अवस्था तथा इस अवस्था पर खरपतवार नियंत्रण नहीं करने पर होने वाली हानि की सीमा निम्नानुसार हैः–

विभिन्न फसलों में क्रान्तिक अवस्था तथा खरपतवारों के प्रकोप द्वारा हानिः

फसल	क्रान्तिक अवस्था *(DAS)	उपज में हानि (प्रतिशत)
मक्का	15–45	40–60
बजरा	30–45	15–60
मूंग/मोठ	15–30	25–50
मूंगफली	40–60	40–50

कपास	15–60	40–50
गेहूँ	30–45	20–40
सरसों	15–40	15–30
चना	30–60	15–25

कैसे करें खरपतवारों का नियंत्रणः

किसान खरपतवारों को अपनी फसलों में विभिन्न विधियों जैसे कर्षण क्रियाएं–गर्मी की जुताई, गहरी जुताई, यान्त्रिकी क्रियाएँ–खुरपी से, हल चलाकर, जैविक विधि–विभिन्न प्रकार के बायोहर्विसाइड के द्वारा खरपतवारों का प्रबन्धन किया जाता है लेकिन पारम्परिक विधियों के द्वारा खरपतवार नियंत्रण करने पर लागत तथा समय अधिक लगता है। अतः रासायनिक विधियों का प्रयोग करके खरपतवार नियंत्रण कर सकते है। रसायनों के द्वारा खरपतवार जल्दी व प्रभावशाली ढ़ंग से नियंत्रण किये जाते है। यह विधि आर्थिक दृष्टि से लाभकारी भी है। खरीफ एवं रबी मौसम की मुख्य फसलों में प्रयोग किये जाने वाले शाकनाशी/रसायनों की विस्तृत जानकारी निम्न प्रकार है–

फसल का नाम	खरपतवार का नाम	खरपतवारनाशी का नाम	मात्रा ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर	प्रयोग का समय
गेहूँ	चौड़ी पत्ती वाले	पेन्डामेथेलिन	750 ग्राम	बुवाई के बाद किन्तु बीज उगने से पूर्व
		मेटसल्फ्यूरान मिथाईल	4 ग्राम	बुवाई के 30–35 दिन बाद
		2, 4 डी एस्टर	500 ग्राम	बोनी किस्मों में बुवाई के 30–35 दिन व अन्य किस्मों 40 से 45 दिनों के बीच
		2, 4 डी अमाइन साल्ट	750 ग्राम	बोनी किस्मों में बुवाई के 30–35 दिन व अन्य किस्मों 40 से 45 दिनों के बीच
	गुल्ली डण्डा व जंगली जई	मेटाक्सीरान	1.25 कि.ग्रा.	बुवाई के 30–35 दिन बाद
		मेजोबेंजाथायोजूरान	1.25 किग्रा.	बुवाई के 30–35 दिन बाद
	एक बीज पत्री व द्विबीज पत्री खरपतवार	क्लोडीनोफॉप प्रोपीनिल +मेटसल्फ्यूरान मिथाईल	64 ग्राम	बुवाई के 30–35 दिन बाद
		सल्फोसल्फ्यूरान + मेटासल्फ्यूरान मिथाईल	32 ग्राम	बुवाई के 30–35 दिन बाद
	जंगली पालक	2, 4 डी एस्टर	400 ग्राम	बुवाई के 30–35 दिन बाद
	घास	सल्फोसल्फ्यूरान	25 ग्राम	प्रथम सिंचाई के बाद
	प्याजी	2, 4 डी अमाइन साल्ट .	750 ग्राम	बुवाई के 30–35 दिन बाद
जौ	चौड़ी पत्ती वाले	2, 4 डी एस्टर	500 ग्राम	बोनी किस्मों में बुाई के 30–35 दिन बाद अन्य किस्मों 40–45 दिन के बीच
		2, 4 डी अमाइन साल्ट	750 ग्राम	बोनी किस्मों में बुाई के 30–35 दिन बाद अन्य किस्मों 40–45 दिन के बीच
		मेटाक्स्यूरान	250 ग्राम	बोनी किस्मों में बुाई के 30–35 दिन बाद अन्य किस्मों 40–45 दिन के बीच
	गुल्ली डण्डा व जंगली जई	मेटाक्सीरान	1.25 कि.ग्रा.	बुवाई के 30–35 दिन बाद

		मेजोबेंजाथायोजूरान		
जीरा	प्याजी	ऑक्सीफ्लूरफेन 2	100 ग्राम	बुवाई के 8 दिन बाद
चना	सामान्यतः फसल में पाये जाने वाले सभी खरपतवारों के लिए	फ्लूक्लोरोलिन	500 ग्राम	पलेवा के बाद बुवाई से पूर्व
		पेन्डामेथेलिन	600 ग्राम	बुवाई के बाद बीच उगने से पूर्व एक समान छिड़काव करें।
सरसों	प्याजी	फ्लूक्लोरोलिन	1 लीटर	बुवाई से पूर्व
	टोरोबेंकी	पेन्डामेथेलिन	0.48 कि.ग्रा.	बुवाई के बाद फसल उगने से पहले
		ऑक्सीडाईजरिल	90 ग्राम	बुवाई के 1 से 12 दिन बाद
कपास (अमेरिकन)	घास वर्गीय खरपतवार	पेन्डामेथेलिन	1.0 कि.ग्रा.	बीजाई से पूर्व या बीजाई के तुरन्त बाद
कपास (देशी)		क्यूजालोफॉप ईथाइल ई. सी. अथवा	50 ग्राम	बुवाई के 15 दिन बाद
		ऑक्सीफ्लूरफेन	0.25 कि.ग्रा.	बुवाई के पश्चात् अंकुरण पूर्व
बाजरा	रूखड़ी	2, 4 डी एस्टर	500 ग्राम	बुवाई के 15 दिन बाद
		एट्राजिन	500 ग्राम	बुवाई के तुरन्त बाद अथवा अंकुरण से पूर्व
	साठी	ऑक्सीफ्लूरफेन	0.25 कि.ग्रा.	अंकुरण से पूर्व
मूंगफली	सामान्यतः फसल में पाये जाने वाले सभी खरपतवारों के लिए	फ्लूक्लोरोलिन	1.0 कि.ग्रा.	आखरी जुताई से पूर्व
		मेटाक्लोर पेन्डामेथेलिन	1.0 किग्रा.	बुवाई के बाद किन्तु बीज उगने से पहले
		ऑक्सीफ्लूरफेन	150 एम.एल.	बुवाई के तुरन्त बाद
खरीफ दालें	सामान्यतः फसल में पाये जाने वाले सभी खरपतवारों के लिए	फ्लूक्लोरोलिन	750 ग्राम	बुवाई से पूर्व अन्तिम जुताई के समय
		ट्राईफ्लूरालिन		
		एलाक्लोर	15 कि.ग्रा.	अंकुरण से पूर्व
मक्का	सामान्यतः फसल में पाये जाने वाले सभी खरपतवारों के लिए	एट्राजिन	500 ग्राम	बुवाई के तुरन्त बाद खरपतवार उगने से पहले
		एट्राजिन +एलाक्लोर	0.5 कि.ग्रा. +1.5 कि.ग्रा.	अंकुरण से पूर्व
तिल	सामान्यतः फसल में पाये जाने वाले सभी खरपतवारों के लिए	एलाक्लोर	2 कि.ग्रा. दाने या 1.5 लीटर	बुवाई से पूर्व
ज्वार	रूखड़ी	एट्राजिन	500 ग्राम	बुवाई के तुरन्त बाद

उक्त रसायनों में से फसल के अनुसार/विभागीय सिफारिश अनुसार किसी एक रसायन का चुनाव करके खरपतवारों को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है लेकिन एक ही फसल प्रणाली में किसी एक विशेष रसायन का बार–बार उपयोग करने से खरपतवारों के अन्दर रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होने की संभावना बनी रहती है, जिसके परिणाम स्वरूप खरपतवारों की प्रकारों व प्रकृति में बदलाव आने का खतरा बना रहता है। ऐसी समस्या से बचने के लिए रसायन चक्र भी अपनाना आवश्यक है।

प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशी के घोल में चिपकाने वाले पदार्थ का प्रयोग करें ताकि घोल पत्तियों पर आसानी से चिपक सके। खरपतवारनाशी के छिड़काव हेतु घोल बनाने के लिए प्रति हैक्टर कम से कम 500–700 लीटर पानी का उपयोग किया जावें।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

पुष्पोत्पादन में नर्सरी व्यवसाय –सफलता की कुन्जी

पारूल पुनेठा एवं ममता बोहरा
सहायक प्राध्यापक औद्यानिकी महाविद्यालय भरसार

भारत में पुष्पोंत्पादन में नर्सरी उद्योग की बहुत सम्भावनाए है क्योंकि विभिन्न जलवायु होने के कारण एक ही पुष्प को विभिन्न मोसमों में उगाया जा सकता है। आधुनिक युग में पुष्पों की खपत अधिक होने की वजह से यह एक आमदनी का जरिया बन गया है, जिससे पुष्प उत्पादन एक उद्योग के रूप में सामने आया है परन्तु अगर पुष्पोत्पादन के अलावा शोभायमान पौधों व मौसमी पुष्पों का प्रवर्धन किया जाए तो काश्तकार अधिक लाभ अर्जित कर सकते है क्योंकि सामान्यतः पुष्पों में अच्छे प्रवर्धन सामग्री की उपलब्धता ना होना विकास की दर को घटा रहा हैं। मौसमी पुष्पों का प्रवर्धन मुख्यतःबीज द्वारा किया जाता है वही कर्तित पुष्पों व शोभायमान पौधो का प्रवर्धन कायिक विधि से किया जाता है।

नर्सरीः– पुष्पोंत्पादन में नर्सरी प्रबंधन शब्द का अर्थ है पौध गृह,पौध प्रवर्धन गृह,पौध प्रजनन गृह या संवर्धन स्थल है, यह एक ऐसा स्थल है जहा पर पौधों को तैयार करने या तैयार पौधों की देखभाल का कार्य किया जाता है, सामान्यतः नर्सरी को पौधशाला भी कहा जाता है।

नर्सरी में पौध तैयार करने के लाभ–

- बीज की कम आवश्यकता पड़ती है, और पौध एवं बीज की बरबादी नहीं होती ।
- उपयुक्त वातावरण प्रदान कर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पौध तैयार की जा सकती है।
- छोटे क्षेत्र में पौध लगाने से उनके रखरखाव का कार्य आसान हो जाता है।
- र्न्सरी निर्माण करने से भूमि की बचत होती है तथा भूमि तैयार करने के लिए अधिक समय मिलता है।
- पौध लगाने के बाद तैयार खेतों में कीट एवं रोगों की रोकथाम सरल होती है।

नर्सरी की महत्वता एवं उद्देश्य

- अच्छे नर्सरी प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य उच्चतम श्रेणी के रोपण सामग्री की उपलब्धता कराना है, जिससे की किसान का बीज बोने का समय,पैसा व मेहनत बचती है।
- वर्तमान समय पर राजमार्गो सहकारी समितियों में शोभाकारी पौधों की आवश्यकता होने के कारण यह रोजगार का एक अच्छा जरिया है।
- पौधशाला तकनीकी, कुशल,अर्द्धकुशल और अकुशल मजदूरों के लिए रोजगार का पर्याप्त अवसर प्रदान करता है।
- प्रगतिषील कृषक इसे एक लाभकारी व्यवसाय के रूप में अपना सकते है।

नर्सरी की श्रेणियाँ

1. **बहुउद्देशीय या मिश्रित नर्सरी –** इस प्रकार की नर्सरी में शोभायमान वृक्षों,झाड़ियों,लताओं के पौधें और मौसमी पुष्पों के बीज तैयार किए जाते है ऐसी नर्सरी में कुछ किस्मों के पौध ही तैयार किए जाते है क्योंकि पौधों की विभिन्नता के कारण अनेक किस्मों के मातृवृक्षों को लगाना ही सम्भव नहीं होता है।
2. **सामान्य नर्सरी या एकउद्देशीय –** इस प्रकार की नर्सरी में एक ही समूह के पौधें तैयार किए जाते है। जैसे वह नर्सरी या तो फिर पुष्पों की होगी या शोभायमान पौधों की और या तो सब्जी के पौधों की ही होगी।
3. **विशिष्ट नर्सरी–** इस प्रकार की नर्सरी में एक ही प्रकार के पुष्प के पौध तैयार किए जाते है तथा ऐसी नर्सरी में उस पुष्प की सभी महत्वपूर्ण किस्मों का संग्रह होता है।

4. **संलग्न या सहायक नर्सरी** – ऐसी नर्सरी का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता,बल्कि वह किसी केन्द्र या संस्थान से संलग्न होती है इसमें उत्पादन प्रमुख रूप से स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार होता है।

नर्सरी की वर्तमान स्थिति एवं विकास की सम्भावना – भारत में शासकीय स्तर पर नर्सरी का कार्य केन्द्रीय औद्योनिक अनुसंधान,प्रादेशिक ओद्योनिक अनुसंधान केन्द्र विश्वविद्यालय के उद्यान विज्ञान विभाग,कृषि विभाग एवं उद्यान विभाग आदि द्वारा किया जाता है। उपयुक्त संस्थानों में पौध प्रर्वधन का कार्य एक स्वंतन्त्र नर्सरी के रूप में न कर कर संलग्न नर्सरी के रूप में किया जाता है। इन संस्थानों पर वे पौधें ही उपलब्ध हो पाते है जिनका अनुसंधान कार्य किया जा रहा है। शासकीय स्तर पर जो भी कार्य चल रहा है उससे पौधों तथा बीज की पूर्ति पर्याप्त रूप से नहीं हो पाती है इसलिए निजी स्तर पर देश में नर्सरी का कार्य प्रमुखता से चल रहा है जो कि अधिकांश शहरी क्षेत्रों में ही सीमित है। ग्रामीय विकास खण्ड स्तर पर अभी भी नर्सरी स्थापित करने के प्रयास नहीं किये गये है।

विकास की सम्भावनाएँ– आर्दश नर्सरी का जो स्वरूप होना चाहिये उसकी तुलना जब हम वर्तमान में नर्सरी की स्थिति से करते है तो कुछ कमियाँ नजर आती है जिन्हें दूर कर आर्दश नर्सरी स्थापित करके अधिकतम लाभ अर्जित किया जा सकता है। उन कमियों का विवरण इस प्रकार है–

1. वैज्ञानिक रेखांकन का अभाव– सामान्यतः नर्सरी में वैज्ञानिक रेखांकन का अभाव होता है नर्सरी के विभिन्न विभागों का उचित स्थान पर न होना, जल निकास एवं सिंचाई गलत तरीके से करना,पहुँचने के लिए मार्ग न होना, अवैज्ञानिक रेखांकन का परिणाम है, जिसके फलस्वरूप उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है, अतएव वैज्ञानिक रेखांकन को अपना कर अधिकतम लाभ अर्जित करना चाहिये।

2. मातृवृक्षों व उचित मूलवृंत का अभाव– शोभायमान पेड़ एवं झाड़ियों को प्रर्वधित करने के लिए मातृवृक्षों की आवश्यकता होती है,अधिकांश नर्सरी में सही किस्म के मातृवृक्षों का अभाव नर्सरी की उत्पादकता को हटाता है, इसलिए यह जरूरी है कि मानक मातृवृक्षों को नर्सरी में लगाया जाए। ऐसे पौधें जो कलिकायन विधि से तैयार किए जाते है, उनमें मूलवृंत का विशेष महत्व होता है, जैसे– गुलाब में उचित मूलवंत का प्रयोग न करने से पौधों में भिन्नता आ सकती है।

3. प्रवर्धित पौधों की उचित देखभाल न करना– बहुत सी नर्सरी में पौधों को प्रवर्धित कर उन्हे जल्द ही बेच दिया जाता है, जो निननक वैज्ञानिक रूप से गलत है, ऐसा करने से उनकी मृत्यु संख्या अधिक हो जाती है। पौधों के प्रतिरोपण या विक्रय का सबसे उपयुक्त समय वह होता है जब उनमें 3–4 पत्तियाँ आने के बाद वह अपना उचित आकार धारण करती है। ज्यादा लम्बाँई होने से भी पौध कमजोर हो जाती है।

4. उचित विक्रय व्यवस्था का अभाव– इसके अर्न्तगत उचित विक्रय स्थल का निर्माण, पैकेजिंग तथा सूची–पत्र तैयार करना सम्मिलित है। वर्तमान समय में पौधों के विक्रय में बहुत लापरवाही बरती जाती है, जिससे पौधों को क्षति पहुँचती है।

5. नवीनतम किस्मों के संचयन का अभाव– ज्यादातर नर्सरी में नवीनतम किस्मों का संचयन कम रहता है। पुरानी तथा अनुत्पादक किस्मों के पौधें ही तैयार किए जाते है और कृषक मजबूरी में ऐसी ही किस्मों को खरीदते है,जिससे की विकास गति धीमी होने के साथ–ही मुनाफे की दर भी घटती है।

6. प्रशिक्षण तथा प्रदर्शन सुविधाओं का अभाव– नर्सरी को एक लाभकारी व्यवसाय के रूप में बढ़ावा देने के लिए यह जरूरी है कि समय–समय पर प्रशिक्षण एवं प्रर्दशन का कार्यक्रम आयोजित किया जाना चाहिये,इससे पौधों का बाजार तो निर्मित होता ही है, साथ ही साथ विकास में भी प्रगति होती है।

7. नर्सरी में पात्रों को सही से न भरना– सामान्यतः पुष्पों की नर्सरी में विभिन्न प्रकार के पात्रों का प्रयोग किया जाता है,जैसे–प्लास्टिक बैग,मिट्टी के गमलें,रूट ट्रेनर इत्यादि इन पात्रों को सही से भरने से व फसल चक्र पूरा होने पर इन्हे न बदलने से पौध को नुकसान पहुँचाता है।

8. गलत तरीके से बीजों की बुवाई– सामान्यतः नर्सरी की क्यारियों में हम बीज बिखेर कर बोते है जो कि उचित तरीका नही है, इस तरीके में बीज की बरबादी होती है,इसलिए उत्तम अकुंरण हेतु बीच की बोआई एक निश्चित दूरी पर करनी चाहिये, तथा छोटे बीजों की बुआई हेतू बीजों को बालू के साथ मिश्रित कर बोना चाहिये।

9. बीज अथवा अन्य प्रोपेग्यूल को अधिक गहराई में बोना – सामान्यतः किसान बीजों को बहुत गहराई में बोते है जिससे कि उनका अंकुरण समय से नहीं हो पाता है इसलिए यह जरूरी है कि उन्हें एक उचित गहराई में ही बोया जायें। उदाहरण के लिए शल्क कंदीय पौधों को जमीन में 5–10 से0मी0 से ज्यादा की गहराई में नहीं बोना चाहिए तथा मौसमी पुष्पों के बीजों को 1–2 से0मी0 की गहराई में बोना चाहिए।

10. बिना उपचारित किए बीज अथवा अन्य प्रवर्धन सामग्री को बोना– मिट्टी के पुष्पों के मृदाजनित रोगों से मुक्त रखने के लिए अगर प्रवर्धन सामग्री को बिना उपचारित किए बोया जाता है तो फसल खराब होने के आसार ज्यादा रहते है, इसलिए यह जरूरी है कि नर्सरी को फार्मेलडिहाइड के घोल या 0.1 प्रतिशत कैप्टान से उपचारित करना चाहिये।

अगर इन बिन्दुओं पर ध्यान देते हुए अगर गल्तियाँ न करके नर्सरी स्थापित करी जाए तो यकीनन काश्तकार अपने मुनाफे को दुगना कर सकते है, आर्दश नर्सरी या पौधशाला कैसे स्थापित करी जाए इसका विवरण आगे दिया जा रहा है।

A. नर्सरी की स्थापना– नर्सरी की स्थापना के लिए सबसे पहले मातृवृक्षों एवं बीज या अन्य प्रवर्धन सामग्री उगाए या फिर किसी स्थापित संस्थान से लें अन्य महत्वपूर्ण कारक जो कि नर्सरी की स्थापना में ध्यान रखने चाहिये वह निम्न है–

1. नर्सरी के लिए उपयुक्त जलवायु– नर्सरी में किस प्रकार के पौध को तैयार करें, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ की जलवायु कैसी है, और कैसी पौध वहाँ के लिए उपयुक्त है। जलवायु के हिसाब से किस स्थान पर किस फसल की नर्सरी ज्यादा अच्छी तैयार की जा सकती है उसका विवरण निम्न है–

शीतोष्ण जलवायु–शल्क कंदीय पौधें, पैन्जी,डेलफिनीयम,जिरेनियम,गुलाब,बुरांश,ऑर्किड आदि।

समश्शीतोष्णजलवायु– कैलेन्डूला,पीटूनिया,कारनेशन,पॉपी,मोरपंखी आदि।

उष्णकटिबन्धीय जलवायु– गेंदा,सालविया,शोभायमान वृक्ष,लतायें व झाडियां आदि।

2. उपयुक्त भूमि– नर्सरी के लिए उत्तम जल निकास वाली उपजाऊ भूमि उपयुक्त मानी जाती है, भारी क्षारीय तथा अधिक अम्लीय भूमि नर्सरी के लिए उपयुक्त नहीं होती है।

3. जल की उपलब्धता– पौधें के समूचित विकास के लिए जल की आवश्यकता अलग–अलग रूपों में होती है। नर्सरी के लिए स्थान का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उस जगह में जल उपलब्धता हो या फिर नजदीक में ही कोई प्राकृतिक स्त्रोत हो अन्यथा पानी के अभाव में पौध अच्छी तरह से नहीं बन पाती है।

4. श्रमिकों की उपलब्धता – श्रमिकों की उपलब्धता न होने के कारण कार्य बाधित हो सकता है।

5. आवागमन के साधन– नर्सरी या तो बाजार के समीप होनी चाहिये, ताकि क्रय–विक्रय आदि में समस्या न हों,नही ंतो आवागमन के अच्छे साधन होने चाहिये।

6. विक्रय व्यवस्था– पौधों के विक्रय के लिए स्थानीय बाजार में पौध की माँग होनी चाहिये, नही ंतो बाजार के समीप ही विक्रय के लिए पौध लगानी चाहिये।

B. प्रवर्धन का तरीका– नर्सरी बनाने से पूर्व इस बात का ज्ञात होना चाहिये की पौध का प्रवर्धन किस तरीके से होता है, उदाहरण के लिए मौसमी पुष्पों का प्रवर्धन बीज द्वारा ही होता है, वही अधिकतम शोभाकारी पौधें जैसे कारनेशन,कोलियस,डाएन्थस का प्रवर्धन कायिक विधि से होता है।

बीज द्वारा प्रवर्धन– बीज से पौधें तैयार करने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिये,जोकि निम्न है–

- बीज स्वस्थ,परिपक्व व रोगरहित होना चाहिये।
- विभिन्न किस्मों में बीजों की अंकुरण क्षमता बने रहने की क्षमता अलग–अलग होती है।
- पौध से बीज को सही अवस्था में एकत्रित करना चाहियें।
- जिन पेड़–पौधों में बीज फलों के अन्दर पाए जाते है,उनमें फलों के पकने के बाद उन्हें कुछ समय धूप में सूखा कर हाथ से या किसी लकड़ी से कुचलकर बीज निकाला जाता है।

कायिक विधि द्वारा प्रवर्धन– जब नए पौधों को बीज के अलावा पौधें के किसी दूसरे भाग जैसे–तना ,जड़ आदि से तैयार किया जाता है तो वह कायिक प्रवर्धन विधि कहलाता है, कायिक प्रवर्धन की विभिन्न विधियों का विवरण इस प्रकार है।

- **कलमों द्वारा–** यह पौधों के प्रवर्धन की सबसे प्रचालित विधि है, जिसमें पौधें के किसी भाग जैसे जड़,तना,पत्ती को अलग करके उपचारित करके बोया जाता है, ताकि उसमें जड़ का विकास हो सके व एक नया पौधा तैयार करा जा सकें, कुछ पौधों में कलमें सुगमतापूवर्क तैयार नहीं होती ,इस स्थिति में वृद्धि नियामक रसायनों का प्रयोग जैसे –इन्डोल ब्यूटाइरिक अम्ल तथा नैपथ्लीन एसिटिक अम्ल का प्रयोग करना चाहिये।

कलमों का प्रकार	**फसल**
अर्थ–दृढ़ काष्ठ कलमें	गुलाब,क्रोटन
दृढ़–काष्ठ कलमें	पोइनसेटिया,झाड़ीदार पौधें
मृदु–शाखीय कलमें	इरीसीन,पौरचुलाका अल्टरनेन्थ्रा
पत्तियों की कलमें	सेन्टपौलिया,कोकोलोबा घास सीडम,ब्रायोफायलम

- **दाब कलम विधि–** ऐसे शोभायमान पौधें जिन्हें कलम विधि से प्रवर्धित नहीं किया जा सकता उन्हें दाब कलम विधि से सरलता पूर्वक तैयार किया जा सकता है, इस विधि में मातृपौधें से शाखा अलग करने से पहले उसमें जड़े उत्पन्न की जाती है,और शाखा में जड़ आने के पश्चात जड़ आने वाले स्थान से काटकर उन्हें स्वतंत्र पौधें के रूप में लगा लिया जाता है।

उदाहरण–चमेली

- **गूटी लगाना –** ऐसे लम्बे तनों में जिन्हें आसानी से मोड़ा नहीं जा सकता वहाँ इस विशिष्ट विधि को प्रयोग करते है,जिसे गुटी लगाना कहते है।

- **शल्क कंदीय पौधों में प्रवर्धन–** शल्क कंदीय पौधों में तने के आधार से एक समूह में शाखाएँ निकलती है जिन्हें अलग–अलग लगाने पर प्रत्येक टूकड़ा नए पौधें को जन्म देता है। विभिन्न शल्क कंदीय पौधों में निम्न तरीकों से प्रवर्धन होता है–

प्रवर्धन का तरीका	**फसल**
शल्क कंद	ट्यूबरोज,एमरेलिस
घनकन्द	ग्लैडियोलस
कन्द	डहेलिया
प्रकन्द	आइरिस,कैना

- **उपरोपण–** यह वह क्रिया है, जिसमें पौधें के एक भाग को दूसरे पौधें या उसके एक भाग में इस प्रकार जोड़ दें कि वह एक पौधें के रूप में वृद्धि कर सकें।

C.नर्सरी स्थापित करने के लिए ढांचों की आवश्यकता

पुष्पोत्पादन में शोभायमान पौधों की नर्सरी स्थापित करने के लिए उसमें विभिन्न प्रकार के ढाचों की आवश्यकता होती है, जिसका विवरण निम्न है–

- **गमला स्थल या गमला घर–** यह वह स्थान है जहा गमलों में लगाए गए पौधें रखे जाते है। गमला क्यारी का छोटा रूप होता है, जिसमें प्रवर्धित पौधें, बीज के पौधें अथवा नाजुक स्वभाव के पौधें लगाए जाते है। इसका आकार निश्चित नहीं होता। गमलों की संख्या के अनुसार ही इनका आकार निश्चित किया जाता है, यह किसी वृक्ष की छाया के समीप या कृत्रिम रूप से बनाए गए छाया गृह के समीप होना चाहिये।

- **छाया गृह या ग्रीन हाउस–** प्रतिकूल वातावरण से पौधों की सुरक्षा करने हेतू नर्सरी में छाया गृह या ग्रीन हाउस का निर्माण किया जाता है। यह छाया गृह विभिन्न प्रकार का होता है– जैसे धुमिका प्रवर्धन कक्ष ,लाथ हाउस आदि। विभिन्न प्रकार के छाया गृहों को कृषक आसानी से बाँस का ढाँचा बनाकर उसके ऊपर पॉलीथीन की चादर बना कर आसानी से बनाया जा सकता है, उसमें खिड़कियों का भी प्रावधान रहता है, जो समय–समय पर खोली और बन्द की जा सकती है, यह कम लागत में आसानी से बनाया जा सकता है।

- **कार्य स्थल–** यह वह स्थान है, जहाँ पर प्रवर्धन से सम्बन्धित कार्य किये जाते है, जैसे कलम तैयार करना, गमलें भरना,खाद या उर्वरक के मिश्रण तैयार करना, बीज उपचार करना मौसमी पुष्पों के बीज निकालना आदि कार्यो को सम्पन्न किया जाता है। इसका कुछ भाग छायादार तथा शेष भाग खुला होना चाहिये।

- **घेर– बाढ़ की व्यवस्था–** जानवरों से पौधों की सुरक्षा करने के लिए घेर–बाढ़ की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। घेरा–बन्दी स्थायी रूप में पक्की दीवालों से लेकर झाड़ियों से भी की जा सकती है। पक्की दीवाल की घेरा–बन्दी मंहगी होती है इसलिए सामान्य रूप से कांटेदार तारो से अथवा झाड़ियो जैसे अगेव,गुल मेंहदी,विलायती इमली आदि द्वारा या फिर फलों में करोंदा तथा नींबू की झाड़ियों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

- **यंत्र गृह और भण्डार गृह–** नर्सरी के कार्यो को सम्पन्न करने के लिए उपकरण,यंत्र,खाद एवं उर्वरक रसायनों आदि को सुरक्षित रखने के लिए भण्डार गृह की आवश्यकता होती है। यह कक्ष पक्का ही बनाना चाहिए जिससे की प्रतिकूल वातावरण मे सामान खराब न होने पाए।

- **खाद या कम्पोस्ट के गड्ढे–** नर्सरी में गोबर की खाद या कम्पोस्ट के लिए गड्ढे तैयार किए जाते है। खाद की बढ़ती कीमतों को देखते हुए अगर हम कम्पोस्ट को खुद तैयार करें तो फसल लागत कम हो सकती है। कम्पोस्ट तैयार करने के लिए गड्ढे का आकार 2X1.5X1 या 3X1.5X1 मी0 हो सकता है, अधिक गहरे गड्ढे बनाने से खाद एवं कम्पोस्ट उचित रूप से नहीं सढ़ पाती है, और नाहि आसानी से निकाली जाती है,

D. नर्सरी तैयार करने की विधि–

- **क्यारी तैयारी–** क्यारियों की तैयारी से पूर्व भूमि शोधन करना बहुत आवश्यक है, अन्यथा मिट्टी में पहले से उपस्थित हानिकारक जीवाणु पौधों को नुकसान पहुँचाते है। यह भूमि शोधन कई प्रकार से किया जा सकता है– जैसे– मृदा– सौरीकरण,फार्मलीन द्वारा या फफूँदीनाषक के द्वारा किया जा सकता है, तत्पश्चात बीज शोधन करना चाहिये, बीज शोधन करने के लिए कैप्टान या थिराम नामक दवा 2–3 ग्राम किग्रा0 बीज दर से प्रयोग करते है। दवा को बीज में अच्छी प्रकार से मिलाने के लिए ढक्कनदार बरतन में डाल कर अच्छी तरह से हिला कर मिला देते है। इसके बाद पौधशाला की मिट्टी की गहरी जुताई कर मिट्टी भुरभुरी बना कर उसमें से खरपतवार निकाल दे। प्रति वर्ग मीटर की दर से 2 कि0ग्रा0 सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट या पत्ती की खाद या 500 ग्राम वर्मी की खाद डालकर मिट्टी में अच्छी तरह मिला लें जिससें बीज जमाव में आसानी होती है। अन्य रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के बाद ही करना चाहियें। यदि नर्सरी की मिट्टी भारी हो तो उसमें प्रति वर्ग मीटर की दर से 2–3 कि0ग्रा0 रेत अवश्य मिलाएँ।

पौध तैयार करने के लिए 3–5 मीटर लम्बी व 1 मीटर चौड़ी तथा भूमि की सतह से 15–20 से0मी0 ऊँची उठी हुई क्यारियाँ बनाते है तथा 2 क्यारियों के बीच में 30–से0मी0 का स्थान छोड़ते है ताकि जल का निकास हो सकें। गमलों में या अन्य पात्रों में बीज बोने के लिए मिट्टी, खाद तथा रेत का मिश्रण बनाना चाहिए। यह मिश्रण दो 2:1:1 के अनुपात में उचित रहता है। पात्रों में भरने वाले मिश्रण को पात्रों की ऊँचाई से लगभग 1 से0मी0 कम भरना चाहिए। ऐसा करने से पानी देते समय बीज बहने का डर नहीं रहता है।

- **बीज की मात्रा –** रोपण के लिए विभिन्न पुष्पों में अलग–अलग बीज की मात्रा की आवश्यकता होती है, इसलिए बीज बोने से पहले उसकी मात्रा का ज्ञान होना आवश्यक है।

- **बीज की बुवाई–** मौसमी पुष्पों को ऋतुओं के अनुसार तीन भागों में बाँटा जाता है– शरद ऋतु, वर्षा ऋतु व ग्रीष्म ऋतु के पुष्प इसी क्रम के अनुसार उनके बीजों को क्यांरियों में बोने का समय भी अलग–अलग हो जाता है, जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है–

	शरद ऋतु के मौसमी पुष्प	**वर्षा ऋतु के मौसमी पुष्प**	**ग्रीष्म ऋतु के मौसमी पुष्प**
नर्सरी लगाने का समय	सितम्बर (मैदानी क्षेत्रों में) फरवरी से मार्च(पहाड़ो में)	जून	फरवरी से मार्च
प्रतिरोपण	अक्टूबर (मैदानी क्षेत्रों में) मार्च से अप्रैल (पहाड़ो में)	जूलाई	मार्च से अप्रैल
उदाहरण	गेंदा, पैंजी, कारनेशन,स्वीट विलियम,	बालसम, काक्स कोम्ब,	जिनिया, कोचिया, गैलारडिया

	आइस प्लांट	गैलारडिया	

नर्सरी की क्यारियों में कृषक सामान्यतः बीज बिखेर कर बोते है, जिससे की बीज की अधिक मात्रा की खपत होती है इसलिए बीज को लाईन में बोया जाता है और लाईन से लाईन की दूरी 5–से0मी0 होनी चाहिये। छोटे बीजों की बुआई हेतू बीजों को बालू के साथ मिश्रित करके बोना चाहिये, उसके बाद बीजों को मृदा की हल्की परत से ढ़क देना चाहिये तथा उसके बाद हजारे की सहायता से क्यारियों को हल्की बौछार द्वारा पानी देना चाहिये।

- **क्यारियों को ढकना –** बीजों को मृदा मिश्रण से ढकने के बाद क्यारियों को पुआल या अन्य लम्बे घास–फूस की पतली तह से ढकते है, ऐसा करने से क्यारी में नमी बनी रहती है और बीज का तेज धूप व पक्षियों से बचाव हो जाता है।

E. नर्सरी प्रबन्धन–

- **पानी–** नर्सरी में पानी बहुत सावधानी के साथ और एकसमान लगाना चाहिये ताकि क्यारियों की सतह की मिट्टी बहें नहीं।

- **खरपतवार नियंत्रण –** नर्सरी में खरपतवार नियंत्रण बहुत जरूरी है इसलिए समय–समय पर हाथ से ही खरपतवार निकाल देनी चाहिए।

- **पादप सुरक्षा–** पौधशाला में मुख्य रूप से डैम्पिंग ऑफ एवं पत्ती मोड़ विषाणु का प्रकोप होता है, इसका प्रबन्धन नर्सरी में कैसे किया जायें इसका विवरण निम्न है–

- डैम्पिंग ऑफ – यह पौधशाला में आने वाली प्रमुख बीमारी है। इस बीमारी का प्रमुख कारण *राइजोक्टोनिया सोलेनाई* एवं *पेलीकूलरिया प्रेटीकोला* नामक फफूंदी है। यदि भूमि में नमी की मात्रा अधिक है तो यह बीमारी अधिक आती है। इसकी नियन्त्रण हेतू बीज की बुवाई से पूर्व क्यारियों को अच्छी तरह उपचारित कर लें, बीज की बुवाई के समय लाइनों एवं बीज के मध्य उचित दूरी रखी जाय,समय–समय पर क्यारियों की सिंचाई एवं निराई–गुड़ाई की जाए, कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.1 प्रतिशत के घोल से पौधों को नर्सरी में ही उपचारित किया जाय तो अधिक लाभ होता है।

- पत्तीमोड़ विषाणु– इस रोग से प्रभावित पत्तियां सिकुड़कर टेढ़ी–मेढ़ी,घुमावदार व छोटी हो जाती है। इस रोग को फैलाने वाली मक्खी क रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास या मेटासिस्टाक्स दवा की 1.5 मिली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधशाला में छिड़काव करना चाहिए।

- **प्रोत्साहन (प्रीकिंग)–** गमले में या क्यारियों में बोयें गए बीज जब उगकर एक से दो से0मी0 ऊँचे हो जाए और उनमें दो या तीन पत्तियाँ आ जाए तो उन्हें दूसरी जगह पर लगाया जाता है इस क्रिया को प्रोत्साहन कहा जाता है।

- **प्रतिरोपण –** प्रतिरोपण का अर्थ है जीवित पौधों को एक स्थान से निकाल कर दूसरे स्थान पर स्थापित करना,ज्यादातर फसलों में पौध 3–4 पत्तिया आने के पश्चात प्रत्यारोपित कर सकते है। ज्यादा लम्बाई हो जाने पर पौध कमजोर हो जाती है, पौध उखाड़ने से पूर्व नर्सरी की क्यारियों में पानी लगा देना चाहिये, ताकि वे क्षतिग्रस्त न हों। प्रतिरोपण का उपयुक्त समय सुबह या शाम होता है, पौधों को प्रतिरोपण करने के लिए पौध को जमीन में बनाए गड्ढे के मध्य में रखकर उसके आस–पास की मिट्टी को गड्ढे में भरकर हाथ से अच्छी प्रकार दबा देना चाहिये, और तुरंत बाद खेत की सिंचाई कर देनी चाहिये।

- **विक्रय व्यवस्था–** पौधों के विक्रय के लिए स्थानीय बाजार का होना आवश्यक है। औद्योनिक तथा औद्योगिक क्षेत्रों में बाजार निर्मित हो जाता है इसलिए ऐसी जगहों के समीप ही नर्सरी स्थापित करनी चाहिये परन्तु उचित प्रयास से कहीं भी बाजार निर्मित किया जा सकता है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

प्रधान मंत्री फसल बीमा योजना (पी.एम.एफ.बी.वाई.)

आरती यादव, सुमन कुमारी यादव, सुमन गठाला
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान)

किसानों की फसल के संबंध में अनिश्चितताओं को दूर करने के लिए सरकार द्वारा 13 जनवरी 2016 को प्रधनमंत्री फसल बीमा योजना को मंजूरी दी गई। प्रधानमंत्री सफल बीमा योजना, किसानों की फसल को प्राकृतिक आपदओं के कारण हुई हानि को किसानों के प्रीमियम का भुगतान देकर एक सीमा तक कम कराने में सहायक है।

इससे पहले की योजनाओं में प्रीमियम दर को ढ़कने का प्रावधान था जिसके परिणामस्वरूप किसानों के लिए भुगतान के कम दावे पेश किये जाते थे ये कैपिंग सरकारी सब्सिडी प्रीमियम के खर्च को सीमित करने के लिए थी, जिसे अब हटा दिया गया है ओर किसानों को बिना किसी कमी के दावा की गयी राशी के खिलाफ पूरा दावा मिल जाता है। इस योजना के अन्तर्गत तकनीकी का प्रयोग किया जाता है, जिससे किसान सिर्फ मोबाइल के माध्यम से अपनी फसल के नुकसान के बारे कें तुरंत आंकलन कर सकता है। मनुष्य द्वारा निर्मित आपदाओं जैसे– आग लगना, चोरी होना, सेंध लगना आदि को इस योजना के अन्तर्गत शामिल नहीं किया जाता है।

योजना की विशेषतायें

- कवर किए जाने वाले किसान – अधिसूचति क्षेत्र में अधिसूचित फसल उगाने वाले सभी किसान
- अनिवार्य कवरेज – अधिसूचित क्षेत्र/फसल के सभी फसली ऋणी किसान जिसके लिए फसल मौसम दौरान ऋण सीमा स्वीकृत की गई है।
- स्वैच्छिक कवरेज – अधिसूचित क्षेत्र/फसल गैर ऋणी किसान।

योजना के अन्तगर्त बीमा योग्य फसलें

- खाद्यान्न फसलें (अनाज, मोटे अनाज और दलहन)
- तिलहन
- वार्षिक वाणिज्यिक एवं वार्षिक बागवानी फसलें।

आवरित जोखिम

क **व्यापक आधार पर आयी प्राकृतिक आपदा के कारण (खड़ी फसलें, अधिसूचित क्षेत्र के आधार पर):** व्यापक आधार पर आयी प्राकृतिक आपदा के कारण उपज में हुये नुकसान की क्षतिपूर्ति (पूर्व निर्धारित गारण्टीड उपज की तुलना में आयी कमी के आधार पर)।

ख **बुवाई/रोपाई न होने के कारण (अधिसूचति क्षेत्र के आधार पर)** : अधिसूचित क्षेत्र के अधिकतर बीमित किसानों द्वारा बुवाई/रोपाई के उद्देश्य से खर्च उठाने के उपरान्त, विपरीत मौसम अवस्थाओं के कारण बीमित फसल की बुवाई/रोपाइ से वंचित हो जाने की दशा में बीमि राशि के अधिकतम 25 प्रतिशत तक की क्षतिपूर्ति।

ग **फसल कटाई उपरान्त नुकसान (व्यक्तिगत फार्म स्तर पर) :** फसल कटाई से 14 दिन की अधिकतम अवधि में चक्रवात/चक्रवाती वर्षा एवं बेमौसम बारिश के कारण हुए फसल नुकसान की क्षतिपूर्ति।

घ **स्थानीय आपदाएं (व्यक्तिगत फार्म स्तर पर) :** ओवावृष्टि, भूस्खलन और जलभराव के कारण फसल को हुए नुकसान की क्षतिपूर्ति।

अग्रिम दावा भुगतान : मौसम के मध्य में, यदि प्राकृतिक आपदाओं के कारण अनुमानित वास्तविक उपज थ्रेसहोल्ड उपज से 50 प्रतिशत से कम रहने की सम्भावना होती है, संभाव्य दावों का अधिकतम 25 प्रतिशत तुरन्त देय होगा जो कि फसल मौसम के अंतिम दावों से समायोजित किया जायेगा।

क्र सं.	मौसम प्रभाव	फसल	किसान द्वारा देय अधिकतम बीमा (बीमित राशि का प्रतिशत)
1.	खरीफ	सभी फसल (सभी अनाज, मोटे अनाज, दलहन और तिलहन)	2.0
2.	रबी	सभी फसल (सभी अनाज, मोटे अनाज, दलहन और तिलहन)	1.5
3.	खरीफ और रबी	वार्षिक वाणिज्यिक एवं वार्षिक बागवानी फसलें	5

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

टमाटर की फसल को रोगों से कैसे बचाएं

[1]सुमन गठाला एंव [2]लक्ष्मण जाट

[1]राजस्थान कृषि अनुसंधान सस्थान, जयपुर
[2]उधान विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर

टमाटर की फसल में कई रोग लग जाते हैं रोगी फलों की बाजार में कीमत कम आती है। ये रोग हैं:–

1. आद्र गलन (डेम्पिग ऑफ)

यह रोग पौधों की छोटी उम्र में नर्सरी में लगता है। इस रोग के दो प्रकार के लक्षण दिखते हैं। पहले प्रकार के लक्षण में पौधा भूमि के बाहर उग कर मर जाता है। दूसरे प्रकार में पौधे जमीन के बाहर उग कर आ जाते हैं परन्तु रोग के प्रकोप से पौधे का जमीन की सतह पर स्थित तने का भाग काला पड़ जाता है। नन्हें पौधे गिरकर मरने लगते हैं। यह रोग भूमि एवं बीज से फैलता है।

प्रबन्धन

बुबाई पूर्व बीज को 3 ग्राम थाइरम या केप्टान प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। नर्सरी आसपास की भूमि से 5 से 6 ईंच उठी हुई भूमि में बनावें। यदि उपरोक्त उपचार नहीं किया हो तो बीज के अंकुरण के बाद पौधशाला में थाइरस या केप्टान 0.2 प्रतिशत घोल का 7 से 10 दिन अन्तराल पर छिड़काव करें।

2. झुलसा (ब्लाइट)

रोग के लक्षण टमाटर के लक्षण पौधों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। लक्षण के आधार पर यह रोग दो प्रकार का होता है

(1) अगेती झलसा (2) पिछेती झुलसा

प्रबन्धन

रोग के लक्षण दिखते ही मेन्कोजेब 0.2 प्रतिशत या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3 कार्बन्डाजिम + आइप्रोडियान 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिन के अन्तराल पर पुनः दोहरावें। स्वस्थ खेत से बीज प्राप्त करें फसलचक्र अपनावें। रोगी पौधों के अवशेषों को नष्ट करें। सिंचाई का उचित प्रबन्धन करें।

3. पर्णकुंचन व मोजेक (विषाणुरोग)

इस रोग में पौधों के पत्ते छोटे रह जाते हैं, मुड़ जाते है तथा सिकुड़ जाते हैं। इसे लीफकर्ल कहते हैं। पत्ते झुर्रियायुक्त हो जाती है। यदि रोग शुरू हो जाता है तो पौधे पर फल–फूल नहीं लगते हैं। यदि फल लगते है तो छोटे एवं विकृत होते हैं। यदि बीमारी देरी से लगती है तो फल की उपज कम होती है। मोजेक के कारण पत्तियों पर गहरा व हल्का पीलापन लिए हुए हरे रंग केधब्बे हो जाते हैं। यदि रोग शुरू मे ी हो जाता है तो पौधे बोने रह जाते है। रोगी पौधे छोटे होते हैं। उक्त दोनों ही प्रकार के विषाणु रोंगों को फैलाने में कीट सफेद मक्खी सहायक होती है।

प्रबन्धन

बुवाई हेतु स्वस्थ खेत से ही बीज प्राप्त करें। खेत में खरपतवार नष्ट कर सफाई रखनी चाहिये। रोग फैलाने वाले कीटों को नियंत्रण करना चाहिये। नियंख्ण हेतु बुवाई पूर्व कार्बोफ्यूरॉन 3 जी का 8 से 10 ग्राम प्रति वर्गमीटर के हिसाब से भूमि में मिलावें। पौध खेत में रोपाई के बाद शुरू में रोगी पौधे नजर आते ही उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए तथा फसल पर मिथाईल डिमेटॉन 25 ई.सी. या डाईमिथेएट 30 ई.सी. 1 मि.लिध प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकतानुसार छिड़काव 15 दिन वाद दोहरावें। फूल आने के बाद उपरोक्त, कीटनाशी के स्थान पर मेलाथियॉन 50 ई.सी. 1 मि.लि. प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

4. मूलग्रंथि (सूत्रकृमि)

यह रोग खेम में कहीं कहीं पर पैचेज में दिखता है। सूत्रकृमि के प्रभाव से पौधे जीने पड़ जाते हैं। छोटे (बौने) रह जाते हैं तथा रोगी पौधों को उखाड़ कर देखने पर उनकी जड़ों में गांठे नज़र आती हैं। रोगी पौधों की बढ़वार रूक जाती है। रोगी खेत से टमाटर की उपज बहुत कम होती है।

रोकथाम

नर्सरी लगाते समय ऊंची उठी हुई जगह पर लगाने तथा वहाँ पर पिछले वर्ष बैंगन, टमाटर, भिंडी या मिर्च की फसल न ली हो फसलचक्र अपनावें। संभव हो तो रोगी खेतों में जुताई कर धूप में तपावें जिससे सूत्रकृमि मर जाए। बुवाई पूर्व नर्सरी में कार्बोफ्यूरान 3 जी 8 से 9 ग्राम प्रति वर्ग मीटर डालें। लियंख्ण हेतु रोगी खेतों में रोपाई पूर्व 15 किलो कार्बोफ्यूरॉन 3 जी कण प्रति हैक्टयर की दर से भूमि में मिलावें। नीम या अरंडी की खेती से भी भूमि में मिलान से रोग में कमी होती है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

अश्वगंधा की वैज्ञानिक खेती

हितेश बोराणा[1*], मुकेश डांगा[1], उमानाथशुक्ला[2], मुकेश मन्डीवाल[1] एवं नवरतन गहलोत[1]

[1]एम.एस.सी छात्र, शस्य विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, मण्डोर, जोधपुर

[2]सहायक प्राध्यापक, शस्य विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, मण्डोर, जोधपुर

*ई–मेलः hiteshborana1996@gmail.com

परिचयः– अवश्गंधा का वैज्ञानिक नाम *Withania somnifera* व कुल सोलनेसी है। राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र में इसे असगण्य कहा जाता है अवश्गंधा आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में प्रयोग किया जाने वाला एक महत्वपूर्ण पौधा है। इसके साथ–साथ इसे नकदी फसल के रूप में भी उगाया जाता है। इसकी ताजा पतियों तथा जड़ों में घोडे की मूत्र की गध आने के कारण ही इसका नाम अश्वगंधा पड़ा। विदानिया कुल की विश्व में 10 तथा भारत में 2 प्रजातिया ही पायी जाती है। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में अवश्गंधा की माँग इसके अधिक गुणकारी होने के कारण बढ़ती जा रही है।

भौगोलिक विवरणः–विश्व में विदानिया कुल के पौधे स्पेन, मोरक्को, जोर्डन, मिश्र, अफिका, भारत, पाकिस्तान तथा श्रीलंका में प्राकृतिक रूप में पाये जाते है। भारत में इसकी खेती 1500 मीटर की ऊँचाई तक के सभी क्षेत्रों में की जा रही है। भारत के पश्चिमोत्तर भाग राजस्थान, महाराष्ट्र मध्यप्रदेश, पंजाब, गुजरात, उतरप्रदेश, एवं हिमाचल प्रदेश आदि प्रदेशों मे अश्वगंधा की खेती की जा रही है। राजस्थान और मध्यप्रदेश में अश्वगंधा की खेती बड़े स्तर पर की जा रही है। इन्ही क्षेत्रों से पूरे देश में अश्वगंधा की मांग को पूरा किया जा रहा है। भारत में अश्वगंधा की जड़ों का उप्पादन 2000 टन से ज्यादा हो रहा है। मध्यप्रदेश में 5000 हेक्टेयर में इसकी खेती की जा रही है।

पौधा परिचयः– अश्वगंधा एक द्विबीज पत्रीय पौधा है। इसके पौधे सीधे, अत्यन्त शाखित, सदाबहार तथा झाडीनुमा 1.25 मीटर लम्बे पौधे होते है। पत्तियाँ रोमयुक्त, अण्डाकार होती है। फूल हरे,पीले तथा छोटे एवं पाँच के समूह में लगे हुये होते है। इसका फल बेरी जो कि मटर के समान दूध युक्त होता हैं जो कि पकने पर लाल रंग का होता है। जड़े 30–45 सेमी. लम्बी 2.5–3.5 सेमी मोटी मूली की तरह होती है। इनकी जड़ो का बाह्य रंग भूरा तथा यह अन्दर से सफेद होती है।

रासायनिक घटकः– अश्वगंधा की जड़ों में 0.13 से 0.31 प्रतिशत तक एल्केलॉइड की सान्द्रता पाई जाती है। इसमें महत्वपूर्ण विदानिन एल्केलॉइड होता है जो कि कुल एल्केलॉइड का 35 से 40 प्रतिशत होता है।

औषधीय महत्वः– इसमें एण्टी टयूमर एवं एण्टी बायोटिक गुण पाया जाता है।

1. पौधो की जड़े शक्तिवर्धक, शुक्राणु वर्धक एवं पौष्टिक होती है। यह शरीर को शक्ति प्रदान कर बलवान बनाती है।
2. अश्वगंधा की जड़ों के पाउड़र का प्रयोंग खाँसी एवं अस्थमा को दूर करने के लिए किया जाता है।
3. तंत्रिका तंत्र संबधी कमजोरी को भी दूर करने के लिए इनका प्रयोंग किया जाता है।
4. अश्वगंधा के द्वारा बहुत सारी आयुर्वेदिक दवाओं का निर्माण किया जाता है,
5. गठिया एवं जोडों के दर्द को ठीक करने के लिए भी अश्वगंधा की जड़ों के चूर्ण का प्रयोंग किया जाता है।

6. नपुंसकता में पौधो की जड़ों का एक चम्मच पाउडर दूध के साथ प्रतिदिन सेवन करने से काफी लाभ मिलता है।
7. अश्वगंधा की जड़ों को त्वचा सम्बन्धी बीमारियों के निदान हेतु प्रयोंग में लाया जाता है।

भूमिः– अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट अथवा हल्की लाल मृदा जिसका पी.एच. मान 7.5–8.0 हो व्यावसायिक खेती के लिए उपयुक्त होती है

जलवायुः– यह पछेती खरीफ फसल है। पौधो के अच्छे विकास के लिये 20–35 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 500–750 मिमी. वार्षिक वर्षा होना आवश्यक है। पौधे की बढ़वार के समय शुष्क मौसम एवं मृदा में प्रचुर नमी का होना आवश्यक होता है। शरद ऋतु में 1–2 वर्षा होने पर जड़ों का विकास अच्छा होता है। शुष्क कृषि के लिए भी अश्वगंधा की खेती उपयुक्त है

बुवाई का समय एवं बीज की मात्राः– अगस्त और सितम्बर माह में जब वर्षा हो जाये उसके बाद जुताई करनी चाहिए दो बार कल्टी वेटर से जुताई करने के बाद पाटा लगा देना चाहिए। 10–12 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर की दर से पर्याप्त होता है। अच्छी पैदावार के लिए पौधे से पौधे की दूरी 5 सेमी. तथा लाइन से लाइन की दूरी 20 सेमी. रखनी चाहियें।

बीज अकुंरणः– सामान्यतः बीज का अंकुरण 6–7 दिन के बाद प्रारम्भ हो जाता है। अश्वगंधा के अपरिपक्त बीज को बुवाई हेतु नही चुनना चाहिए, क्योंकि इनका भ्रूण परिपक्व नही हो पाता है। 8–12 महीने पुराने बीज का जमाव 70–80 प्रतिशत तक होता है। बीज के अच्छे अंकुरण के लिए आई.ए.ए.,GA_3अथवा थायोयूरिया का प्रयोग करना चाहिये।

बुवाई की विधियाँः– फसल की बुवाई 2 प्रकार से की जाती है–

1. **कतार विधि**

2. **छिटकवाँ विधिः**– इस विधि के द्वारा बुवाई करना अच्छा रहता है। तैयार किये गये खेत में कल्टीवेटर के द्वारा हल्की जुताई करके बीज को आधा रेत में मिलाकर खेत में छिड़क देना चाहिये इस विधि के द्वारा बुवाई करने पर 1 वर्ग मीटर 30–40 पौधे ही रखने चाहिए। इस प्रकार एक हेक्टेयर मे 3 से 4 लाख पौधों की संख्या रखनी चाहिए।

बीज उपचारः– बीज की सुषुप्तावस्था को खत्म करने के लिये बीज कोGA_3के 100PPMघोल मे 24 घण्टे तक भिगोना चाहिये। इसके अलावा फफूँद जनित रोगों की रोकथाम के लिये बीज को बोने से पूर्व बाविस्टीन अथवा डाइथेन एम–45 2 व 3 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

उन्नत शील प्रजातियाँ–पोशिता,रहितता, नागौरी, जवाहर असगंधा–2,जवाहर असगंधा–20,जवाहर असगंधा–134,Ws -20,Ws-134

खाद एवं उर्वरकः– सामान्यतः इस फसल में उर्वरकों का प्रयोग नही किया जाता है। परन्तु शोध पश्चात् यह ज्ञात हुआ है कि अमोनियम नाइट्रेट के प्रयोग से जड़ों की अधिकतम उपज प्राप्त होती है। कुछ शोध में जिब्रेलिक एसिड् के प्रयोग से भी जड़ों के विकास मे अच्छे परिणाम प्राप्त हुये है।खेत की तैयारी करते समय सडी गोबर की खाद या जैविक खादों का प्रयोग 5 टन प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाईः– अश्वगंधा वर्षा ऋतु की फसल हैं। इसलिए इसमे बहुत अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। मृदा में नमी की कम मात्रा होने पर सिंचाई करना अनिवार्य है। जल भराव की समस्या होने पर जड़ों का विकास ठीक प्रकार से नही हो पाता है। इसलिए खेत में जल निकास की व्यवस्था ठीक प्रकार से कर लेनी

चाहिये। जल भराव के अधिक हो जाने पर पौधों की वृद्धि रूक जाती है तथा पौधे मरने लगते है। अश्वगंधा की खेती सिंचित एवं असिंचित दोनो ही दशाओं में की जाती है। असिंचित अवस्था में जड़ों की बढ़वार अधिक होती है। क्योंकि जड़े पानी की तलाश में सीधी बढ़ती है और शाखा रहित होती है।

रोग एवं कीटः– रोग एवं कीट का प्रभाव पौधे पर होता है परन्तु व्यावसायिक दृष्टिकोण से अश्वगंधा की फसल में यह नुकसानदायक नहीं है।

फसल की खुदाईः– फरवरी–मार्च के महीने में पौधों में फूल एवं फल आना प्रारम्भ हो जाते है। अश्वगंधा की फसल अप्रेल–मई में 240–250 दिन के पश्चात् खुदाई के योग्य हो जाती है। परिपक्व पौधे की खुदाई की सही अवस्था जानने के लिए फलों का लाल होना और पतियों का सूखना आदि बातों का अध्ययन करना चाहिये। खेत में कुछ स्थानों से पौधों को उखाड़ कर उनकी जड़ों को तोड़ कर देखना चाहिये यदि जड़ आसानी से टूट जायें और जड़ों में रेशे न हो तो समझ लेना चाहिये कि फसल खुदई हेतु तैयार है। जड़ों के रेशेदार हो जाने पर जड़ की गुणवत्ता में कमी आ जाती है। पौधों को जडो सहित उखाड़ लेना चाहिये यदि जड़े ज्यादा लम्बी है तो जुताई किया भी की जा सकती है। बाद में पौधों को एकत्र करके जड़ों को काट कर पौधों से अलग करके छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर धूप में सुखा लेना चाहिये। पके फलों को हाथ से तोड़ कर सुखा कर बीजों को अलग कर देना चाहियें।

पैदावारः–1 हैक्टेयर भूमि पर 4–5 क्विंटल सूखी जड़े प्राप्त हो जाती है। 8–10 सेमी. लम्बी तथा 10–15 मिमी. व्यास वाली जड़ों को व्यापारिक दृष्टिकोण से अच्छा माना जाता है। बीज प्राप्त करने के लिये फसल के 5 प्रतिशत भाग की खुदाई नही करनी चाहिये। जब पौधों के अधिकतर फल लाल हो जाये तब इन्हें काट कर सुखाने के पश्चात् बीज निकाल लेना चाहिये।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

आज की आवश्यकता, किचन गार्डन (सब्जी बगीचा)

रेखा सोडानी, गिरिराज गुप्ता एवं सीमा

कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस, उत्तर प्रदेश–221005
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर–313001

भोजन शास्त्रियो एवं वैज्ञानिकों के अनुसार संतुलित भोजन के लिये एक वयस्क व्यक्ति को प्रतिदिन 85 ग्राम फल एवं 300 ग्राम सब्जियां खानी चाहिये। जिसमें लगभग 125 ग्राम हरी पत्तेदार सब्जियां, 100 ग्राम जड़ वाली सब्जियां एवं 75 ग्राम अन्य प्रकार की सब्जियो का सेवन करना चाहिये। लेकिन वर्तमान में इनकी उपलब्धता मात्र 145 ग्राम हैं। घर की बगीचा में सब्जी उत्पन्न करना कई दृष्टिकोण से लाभप्रद है, जिससे परिवार के सदस्यों के स्वास्थ्या तथा ज्ञान की वृद्धि होती है। इसमें जगह का चुनाव, किस्मों का चयन स्थिति के आधार पर ही सुनिश्चित करते हैं। सब्जी बगीचा का आकार भूमि की उपलब्धता एवं व्यक्तियों की संख्या पर निर्भर करता है। सामान्यताः 4.5 व्यक्तियों वाले परिवार की पूर्ति के लिये 200–300 वर्ग मी भूमि पर्याप्त होती है।

सब्जी बगीचा में सब्जी उत्पादन का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है। अच्छे स्वास्थ्य के लिये दैनिक आहार में संतुलित पोषण का होना बहुत जरूरी है। फल एवं सब्जियां इसी संतुलन को बनाये रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, क्योंकि ये विटामिन, खनिज लवण, कार्बोहाइड्रेट, वसा व प्रोटिन के अच्छे स्त्रोत होते है। फिर भी यह जरूरी है कि इन फल एवं सब्जियों की नियमित उपलब्धता बनी रहे इसके लिये घर के चारो तरफ उपलब्ध भूमि पर घर के साधनों जैसे– उपलब्ध भूमि में रसोई व नहाने के पानी का समुचित उपयोग करते हुये स्वयं एवं परिवार के सदस्यों की देखरखे व प्रबंधन में स्वास्थ्यवर्धक व गुणवत्तायुक्त मनपसंद सब्जियों, फलो व फूलों का उत्पादन कर दैनिक आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती हैं। सब्जियों के बढ़ते दाम सभी घरों में बजट पर प्रभाव डालते हैं, मजबूरन हमें मंहगी और रसायन युक्त सब्जियॉ खरीदनी पड़ती और जो हमारे स्वास्थ्य के साथ हमारी जेब पर भी वितरीत प्रभाव डालती हैं, ऐसे अगर घर में ही जैविक (आर्गेनिक) सब्जियां उगा सकें तो इससे बेहतर कुछ नहीं।

सब्जी बगीचा लगाने हेतु ध्यान देने योग्य बातेः–

- सब्जी बगीचा के एक किनारे पर खाद् का गड्ढ़ा बनाये जिससे घर का कचरा, पौधो का अवशेष डाला जा सके जो बाद में सड़कर खाद् के रूप में प्रयोग किया जा सके।
- बगीचे की सुरक्षा के लिये कंटीले झाडी व तार से बाड़ (फेसिंग) लगाये, जिसमें लता वाली सब्जियां लगाये।
- सब्जियों एवं पौधों की देखभाल एवं आने जाने के लिये छोटे–छोटे रास्ते बनाये।
- रोपाई की जाने वाली सब्जियो के लिये किसी किनारे पर पौधशाला बनाये जहां पौध तैयार किया जा सके।
- आवश्यकतानुसार सब्जियों के लिये छोटी–छोटी क्यारियां बनावे।
- क्यारियो के सिंचाई हेतु नालियां बनाये।
- फलदार वृक्षो को पष्मिच दिशा की होर एक किनारो पर लगाये जिससे छाया का प्रभाव अन्य पर ना पडे।
- मनोरंजन के लिये उपलब्ध भूमि के हिसाब से मुख्य मार्ग पर लॉन (हरियाली) लगाये।

- फूलो को गमलों पर लगाये एवं रास्तों के किनारो पर रखे।
- जड़ वाली सब्जियों को मेडो पर उगाये।
- फसल चक्र के सिद्धांतो के अनुसार सब्जियों का चुनाव करे।
- समय–समय पर निराई–गुडाई एवं सब्जियों, फलो व फूलो के तैयार होने पर तुड़ाई करते रहे।
- सब्जियो का चयन इस प्रकार करे कि साल भर उपलब्धता बनी रहे।
- कीटनाशको व रोगनाशक रसायनो का प्रयोग कम से कम करे यदि फिर भी उपयोग जरूरी हो तो तुड़ाई के पश्चात एवं कम प्रतीक्षा अवधि वाले रसायनो का प्रयोग करे।

बोने एवं पौध रोपण का समयः– सब्जियों को मौसम के हिसाब से लगाया जाना चाहिये।

खरीफ मौसम वाली सब्जियांः– इन्हें जून–जुलाई में लगाया जाता है जैसे– लोबिया, तोरई, गिल्की, भिण्डी, अरबी, करेला, लौकी, गूंवार, मिर्च, टमाटर आदि।

रबी मौसम वाली सब्जियांः– इन्हें सितम्बर–नवम्बर में लगाया जाता है जैसे– बैंगन, टमाटर, मिर्च, आलू, मेथी प्याज, लहसुन, धनिया, पालक, गोभी, गाजर, मटर आदि।

जायद मौसम वाली सब्जियांः– इन्हें फरवरी–मार्च में बोया जाता है जैसे– कद्दूवर्गीय सब्जियां, भिण्डी आदि।

सब्जी बगीचा लगाने के लाभः–

- घर के चारो ओर खाली भूमि का सदुपयोग हो जाता है।
- घर के व्यर्थ पानी व कूड–करकट का सदुपयोग हो जाता है।
- मनपसंद सब्जियो की प्राप्ति होती है।
- साल भर स्वास्थ्यवर्धक, गुणवत्तायुक्त व सस्ती सब्जी, फल एवं फूल प्राप्त होते रहते है।
- परिवार के सदस्यों का मनोरंजन व व्यायाम का अच्छा साधन है, जिससे शरीर स्वस्थ रहता है।
- पारिवारिक व्यय में बचत होता है।
- सब्जी खरीदने के लिये अन्यत्र जाना नहीं पड़ता।

सारांशः– इस प्रकार सब्जी बगीचा की सहायता से संतुलित पोषण को प्राप्त किया जा सकता है, साथ ही अतिरिक्त उत्पादन को बेचकर लाभ कमाया जा सकता है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

आँवला की खेती

सुमन कुमारी यादव, आरती यादव एवं सुमन गठाला
विद्यावाच्सपति छात्रा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान)

आँवले का वानस्पतिक नाम एम्बलिका ऑफिसिनेलिस तथा कुल यूफोरबिएसी है। आँवले का फल औषधीय गुणों से भरपूर होने के कारण अमृत फल के नाम से भी जाना जाता है। इसके फल के 100 ग्राम गुद्दे में 500 – 750 मिली ग्राम विटामीन सी पाया जाता है, जो कि अमरूद, टमाटर और सिट्रस फलों से ज्यादा है। इसके साथ ही आँवले में शर्करा और लवण–कैल्सियम, फास्फोरस, पोटैशियम एवं आयरन आदि भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसके ताजे फलों का उपयोग कैण्डी, जैम, जैली, अचार, मुरब्बा, चटनी, च्यनप्राश और सूखे फलों का उपयोग त्रिफला चूर्ण तथा शैम्पू आदि बनाने में किया जाता है।

आँवले की खेती उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश एवं आन्धप्रदेश में की जाती है। इसकी खेती ऊसर–बंजर एवं बेकार पड़ी भूमि में भी हो जाती है।

औषधीय उपयोग – यह फल पाचन सम्बंधित समस्त रोगों को दूर करता है। आँवले का फल मूत्रल, रक्तशोधक, आँवले का फल मूत्रल, रक्तशोधक, रूचिकर होने से यह अतिसार, प्रयेह, रक्तालप्ता, अम्लपित्त अर्श, अजीर्ण, अरनचि तथा श्वास सम्बन्धित रोगों से मुक्ति प्रदान करता है। साथ ही यह अपच, diabetes fever, jaundice, cough, dyspepsia, bronchitis & dyeing industries के लिए भी उपयोग होता है। यह पॉलीफिनाल की उपस्थिति के कारण कैन्सर से भी बचाता है। यह त्रिदोष को दूर करने वाला हृदय को बल देने वाला फल है। इसका प्रयोग नेत्र रोगों में अम्ल पित्त विरेचन, गढ़िया, सुजाक तथा विभिन्न प्रकार के ज्वरोकों को नष्ट करने में किया जाता है।

स्थान का चुनाव

ऐसा स्थान जहां जलभराव ना हो, आँवले के लिए उपयुक्त है। इसके लिए दोमट ऊसर बंजर आदि किसी भी प्रकार की भूमि का चयन किया जा सकता है।

गड्ढ़ों की खुदाई एवं भराई सामान्य भूमि में 10×10 मी. दूरी पर तथा ऊसर–बंजर अथवा बेकार भूमि में 8×8 मी. की दूरी पर करना चाहिए।

गड्ढे का आकार 1×1×1 घन मीटर होना चाहिए। जिसे 15.20 दिन पहले खोदकर, खुला छोड़ देना चाहिए।

सामान्य भूमि में गोबर की खाद की 2–3 टोकरी नीम की खली 1 से 1.5 किग्रा तथा एस.एस.पी. 500 ग्राम को मिलाकर प्रत्येक गड्ढ़े की भराई कर देते है। वही ऊसर–बंजर अथवा बेकार भूमि में प्रत्येक गड्ढ़े में 3–4 टोकरी गोबर की खाद, 15–20 किग्रा, बालू 1–1.5 किग्रा नीम की खली तथा 5 से 8 किग्रा जिप्सम मिलाकर गड्ढ़ों की भरार्ठ जमीन की सतह से 10 से 15 सेमी. की ऊँचाई तक कर देना चाहिए।

पौध रोपण – इसका उपयुक्त समय जुलाई–अगस्त का महिना होता है। यदि पानी की सुविधा हो तो पौधे रोपण जनवरी–फरवरी मे भी किया जा सकता है। युवा पौधे को गर्मियो में तेज गर्म हवाओं से तथा सर्दियों में बर्फीली हवाओं से बचाना जरूरी है।

किस्मों का चयन – वैसे तो आँवले की बहुत सी पुरानी प्रचलित किस्में है जैसे कि चकैया, बनारसी एवं फ्रान्सिस (हाथी झूल) आदि पर इनमें कोई या कोई कमियाँ है जिसके कारण नई किस्मों का विकास किया गया जो पुरानी किस्मों से ज्यादा प्रचलित है।

जैसे NA-4, NA-5, NA-6, NA-7, NA-10 आदि

खाद एवं उर्वरक – एक युवा पौधे को 20 किग्रा तथा फलदार पौधे को 30–40 किग्रा. सडी हुई गोबर की खाद देवें। प्रत्येक साल सितम्बर–अक्टूबर के महीने मे देनी चाहिए।

इसके साथ ही पौधे को 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस व 75 ग्राम पोटाश देना चाहिए।

गोबर की सड़ी हुई खाद एवं पोटाशयुक्त उर्वरकों की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्राा जनवरी के अन्त या फरवरी के प्रारम्भ में तथा नत्रजन की शेष मात्रा जुलाई–अगस्त में फल वृद्धि के समय देना चाहिए।

सिंचाई – पहली सिंचाई पौधा रोपण के तुरन्त बाद करनी चाहिए। गर्मियों में 10–12 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। फल प्रारम्भ हो जाने पर सुसुप्तावस्था (Dec.-Jan.) में तथा फूल आने पर मार्च में सिंचाई नहीं करनी चाहिए। आंवला का पौधा 0.75 से 1 मीटर की ऊँचाई पर एकल तना प्रणाली से कटाई की जाती है।

निराई गुडाई – पौधों की स्वस्थ रखने, अच्छी पैदावार होने तथा खाद व उर्वरकों के दुरूपयोग से बचाने के लिए समय–समय पर खरपतवार निकालकर आँवले की हल्की गुड़ाई करते रहना चाहिए।

फसल सुरक्षा –

उत्तक क्षय रोग – इसके कारण 60–80 प्रतिशत फल अन्दर से काले पड़कर गिर जाते है। यह विकार बोरॉन की कमी से होता है। सितम्बर – अक्टूबर महीने में 0.6 प्रतिशत बोरेक्स के हर पन्द्रह दिनों के अन्तराल पर तीन छिड़काव करके इससे बचाया जा सकता है।

प्रमुख कीट

छाल खाने वाला कीट– यह कीट शाखा के जोड़कर सूराग बनाकर अन्दर उत्तक को खाकर अवशेष बाहर निकाल देता है जो सूराग के पास बुरादे जैसा पड़ा रहता है। इसके रोकथाम के लिए सूराख को साफ कर पेट्रोल या मिट्टी के तेल में रूई को भिगोकर सूराख में भर देना चाहिए।

2. माहू– इसका प्रकोप जब मौसम में नमी हो या बादल छाये हो तब अधिक होता है। यह कोमल भागों एवं छोटे–छोटे फलों के रस को चूसकर कमजोर बना देता है। इसके रोकथम के लिए मोनोक्रोटोफास दवा 1.25 मि.ली. को 1 ली. पानी में धोलकर 1.5 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव कर देना चाहिए।

3. शूट गाल मेकर (गांठ बनाने वाला कीट)– इसकी रोकथाम के लिए प्रभावित टहनियों को 5–7 सेमी. नीचे से काटकर निकाल देते है तथा इसे कहीं गड्ढ़े में डालकर जला देते है।

प्रमुख बीमारियाँ –

आँवला रस्ट – यह कवक जनित रोग है जिसके कारण पत्तियों पर लाल रंग के गोल एवं अण्डाकार धब्बे बन जाते है। इस रोग के कारण फलों का भराव कम हो जाता है। इसके रोकथाम के लिए 0.3% मैंकोजेब का 2 छिडकाव मध्य सितम्बर से अक्टूबर में 15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

गुणवत्ता – फलों की भण्डारण क्षमता बढ़ाने के लिए 1% $CaNO_3$ के घोल के दो छिड़काव फल तोड़ने के 20 एवं 10 दिन पहले करना चाहिए।

उपज – 10–12 वर्ष की उम्र में 150–200 किग्रा. फल प्रति पौधा प्राप्त हो जाती है। उपज की मात्रा जाति व कृषि जलवायु परिस्थतियों पर निर्भर करती है।

Ek : e?k
fd lku b & if=dk
www.marumegh.com ij vkuykbu miyC/k
©2016 marumegh ISSN:2456-2904

f'k'k eDdk ¼cch d,u½ dh mRiknu rduhd

fufru ok"k.k;[1] 'khryjkt 'kek[2]
[1]Hkkjrh; —f"k lkf[;dh; vuqla/kku laLFkku& ubZ fnYyh] [2]jktLFkku —f"k vuqla/kku laLFkku& t;iqj

ifjp;

f'k'k eDdk ¼cchd,u½ vxfyuek vkdkj d eDd dk ,d vfu"kfpr Hkêk g] ftle 2&3 lehrd flYd fudy jgr gA bl vkerkj ij cky fudyu d 1&3 fnu d vnj ik/k l rkM fy;k tkrk gA bldh rMkb mxk; tku oky ekle ij fuHkj djrh gA bldk mi;kx [kku] lykn] bR;kfn vkj bldk ik/kk i'kvk d fy, gjk pkjk d :i e ç;kx fd;k tkrk gA;g ?kjy [kir rFkk fu;kr nkuk d fy, dkQh egRoi.k Qly g D;kfd 1 o"k e bldh 3&4 Qly yh tk ldrh gA

cch d,u dk ikf"Vd egRo

cch d,u ,d ikf"Vd vkgkj g rFkk bldh ikf"Vdrk dN ekleh lfCt;k d cjkcj ;k mul Hkh vPNh gkrh gl çkVhu] foVkfeu rFkk ykg d vfrfjä] ;g Q,LQkjl dk ,d mR—"V lkr gA ;g j'knkj çkVhu dk Hkh vPNk lkr g rFkk vklkuh l ip Hkh tkrk gA ;g dhVuk'kdk d vo'k"kk l yxHkx eä gkrk g D;kfd cch d,u fNyd l Hkkfyhkkfr <dh gkrh g tk dhV o 0;kf/k;k l bl vPN l lqjf{kr j[krh gA

cch d,u mRiknu d ykHk

- bl lky Hkj mxk;k tkrk g ftll Qlyk e fofo/krk dk c<kok feyrk gl ;g 'kgjh {k= d vklikl mxk; tku d fy, mi;ä gA
- lkekU; r% fdlkuk dk Qly l vk; çklr dju d fy; yc le; rd brtkj djuk iMrk gA cch d,u ,d vYi vo/kh okyh Qly gA vr% fdlku de l de le; e vf/kd vk; çklr dj ldr gl
- vrjk"Vh; cktkj e cch d,u dh cgr ekx gA
- cch d,u dh Qly yu d i'pkr bll bll çklr gj pkj dk i'kvk d mi;kx e yk;k tk ldrk g vkj bl çdkj fdlku gj pkj d mi;kx e yk;h tku okyh Hkfe dk vU; mi;kx e yk ldr gA
- bll db çdkj d 0;tu cuk; tk ldr g ftll bldh ekx vkpkj] pVuh] li] bR;knh cuku okyh diuh vkj jLVjkV e cgr gkrh gA
- ;g ,d udnh Qly d :i e fdlkuk dh cgrj vk; d fy, mi;ä Qly gA

çtkfr;k dk p;u

vYi vof/k e r;kj gku okyh ek/;e Åpkb rFkk vf/kd Qyu oky ,dy Ø,l ldj dk p;u djuk pkfg,] tl% ,p- ,e- 4] ch- ,y- 42] çdk'k] food ldj eDdk&9] ,p- D;- ih- ,e- 1 vkfnA

Hkfe dk p;u

ty fudkl dh mfpr 0;oLFkk ,o cyb nkeV feêh mi;ä gkrh gA

[kr dh r;kjh

lkekU; r%dYVhoVj ;k fMLd gjk l 1&2 trkb djd feêh HkjHkjh cuk yAcokb l 15&20 fnu igy] 8&10 Vu @gDV;j xkcj dh [kkn dk dYVhoVj dh enn l ij [kr e lkeku :i l feyk; A

cokb dk le;

nf{k.k Hkkjr e bl ij o"k Hkj yxk;k tk ldrk g A mÙkjh Hkkjr e bl Qjojh l uoEcj d chp ck;k tk ldrk g A mÙkjh Hkkjr e fnlEcj – tuojh e ukfy;k çfrjkfir djd mxk;k tk ldrk gA bld fy, uoEcj e uljh mxkuk pkfg, A vxLr l uoEcj d chp yxk; x, cch d,u lokÙke fdLe d gkr gA

cht nj% 22 l 25 fdyxkxke çfr gDV;jA

cht mipkj

cokb l io chtk dk dodukf'k;k rFkk dhVukf'k;k l mipkfjr dj yuk pkfg, rkfd bUg cht rFkk enk tfur jkxk d lkFk dhV&0;kf/k;k l Hkh cpk;k tk ld A

- Vh ,y ch] ch ,y ch] ,e ,y ch vkfn d fy, ckfofLVu ¼1 xke½ dlVku ¼1 xke½ dk 2 xke çfr 1 fdykxke cht e vPN l feyk;A
- fifFk;e okr lMu d fy, dlVku dk 2-5 xke çfr 1 fdykxke cht e vPN l feyk; A
- nhed rFkk ruk eD[kh d fy, fQçkfuy dk 4 feyhyhVj çfr fdykxke cht dh nj l ç;kx djA

cokb dh fof/k

fjtj e'khu dh enn l e< dk fuek.k dj A cokb eMk d nf{k.kh Hkkx e djuh pkfg, rFkk ik/kk d vkdkj d vulkj ifä l ifä dh njh 60 lVhehVj rFkk ik/k l ik/k dh njh 15 l 20 lVhehVj j[kuh pkfg, A cht jkir le; gj e< ij 2 chtfNæ¼fgy½ ¼3&4 leh- xgjkb½ e nh xb mfpr njh ij ckr pyA cokb d 12&15 fnuk d ckn ,d Nn e doy ,d LoLFk vdj NkM vkj vU; dk gVk nA

mojd çc/ku

enk tkp d vk/kkj ij ik"kdk dk ç;kx djA

QfVykbtj	**fdxk çfr gDV;j**	**fdxk çfr ,dM fdxk çfr oh?kk**	
;fj;k	230&240	95&135	55&90
Mh,ih ¼Mkb½	130	52	35
ikVk'k	40	16	10
ftd lYQV	25	10	7

cokb d le; li.k Mkb] ikVk'k] ftd lYQV vkj 25 fdyk çfr gDV;j ;fj;k n A 'k"k ;fj;k bl çdkj Mky½&

- 50 fdyk çfr gDV;j ;fj;k 4 iÙkh voLFkk ijA
- 70 fdyk gDV;j ;fj;k 8 iÙkh voLFkk ijA
- 60 fdyk gDV;j ;fj;k uj etjh dk rkMu d ioA
- 35 fdyk gDV;j ;fj;k uj etjh dk rkMu d cknA

[kjirokj çc/ku

- ,Vkftuh 1 & 1-5 fdxk@ 500 yhVj ikuh çfr gDV;j ¼vFkok½ 400 xke & 600xke @200 yhVj ikuh çfr ,dM ¼vFkok½ 250 & 375 xke@ 125 yhVj ikuh çfr ch?kk vkj bl cht cku d 2 fnu d Hkhrj gh fNMdko dj yA
- ik/kk dh ?kVuk rd mpkb dh fLrfFk e dYVhoVj l xMkb djA

ty çc/ku

igyh flpkb e cgr /;ku nu dh t#jr gkrh gA ikuh eMk d Åij ugh cguk pkfg, A lkekU; :i l ukfy;k e nk frgkb Åpkb rd gh ikuh nuk pkfg, A flpkb Qly d ekx d vulkj] o"kk rFkk feVVh dh ueh jkd j[ku dh {kerk dk /;ku e j[kdj gh djuk pkfg, A

flpkb dh –f"V l

- ;ok ik/k]
- ik/k dh ?kVu rd dh Åpkb dh fLrfFk
- flYd vkr le;]
- cch d,u rkMr le;]

dh fLFkfr;k lcl lonu'khy gA bu fLFkfr;k e flpkb vo'; djuh pkfg, A gYdh vkj dN fnuk d vrjky ij flpkb djuk Qly d fy, vPNh gkrh g A BMh d ekle e Qly dk iky l cpu d fy, feVVh dk xhyk j[kuk t:jh g A

dhV çc/ku

cch d,u d fy, ruk Hknd] xykch ruk Hknd rFkk lkj?ke rukeD[kh ,d xHkhj leL;k g A bld jkdFkke d fy, cht teu d 10&20 fnu i'pkr 2-5 xke dkcfjy çfr yhVj ikuh e ?kksy dj ,d ;k nk fNMdko ik/k d xkHk e vo'; dj A

uetjh dk rkMuk ¼fMVlfyx½

cch d,u dh x.koÙkk dk cuk; j[ku d fy, fMVlfyx ,d vfuok; çfØ;k g A ik/k d lcl mijh iêh d Vly fudyr gh bl rjr gVk yu pkfg, A bl ifäc) rjhd l djuk pkfg, A fMVlfyx fØ;k e iÙkk dk ugh gVkuk pkfg, D;kfd bll çdk'k lLy"k.k dh fØ;k çHkkfor gkrh g rFk cch d,u dh vklr mit de gk tkrh g A ;g n[kk x;k g fd fMVlfyx e ;fn 1&3 iÙkh;© dk gVk;k tkrk g rk bll mit 15&20 çfr'kr de gk tkrh g A

cch d,u rkMu dk lgh rjhdk

- cchd,u dh xYyh dk 2&3 leh- flYd vku ij rkM vkj xYyh l yxh iÙkh dk u rkM A
- cchd,u dk lcg ;k 'kke e rkM A
- [kjhQ e çfrfnu ,o jch e 1 fnu NkMdj flYd vku d ckn 1&3 fnu d vnj
- xYyh dh rMkb dj y A

mit

- fNydk lfgr cchd,u¼ 55&114¼fDoVy@gDV;j½
- fNydk jfgr cchd,u¼ 11&19 ¼fDoVy@gDV;j½
- gjk pkjk¼ 150&400 ¼fDoVy@gDV;j½

Ek : e?k
fdlku b & if=dk
www.marumegh.com ij vkuykbu miyC/k
©2016 marumegh
ISSN:2456-2904

fDuok dh [krh

Mk- fufru foØe[1*] Mk- uohu dekj[1] rFkk Mk- jktk glu[2]
[1]ftyk ifj'kn df'k egkfo|ky;] cknk ¼mRrj çn'k½
[2]Hkkjrh; nygu vuql/kku lLFkku] dkuij ¼mRrj çn'k½
*Corresponding author: biochemistnitin@gmail.com

fDuok (*Chenopodium quinoa* willd.) ,d i'ih; ik/kk g tk fd vejfFkf;h dy dh Qly g ;g ,d o'kh; "kkd gA fduok d fy; vkHkkh vkukt d vUrxr j[kk x;k gA bldk cht f}cht i=h; gkrk gA bld ik/k dh vklr yEckb 1 ehVj l 1-5 ehVj rd gkrh gA fDuok dk bfrgkl 5000 lky ijkuk g rFkk bldh mRifRr LFkku ,.Mht (lkmFk vefjdk) ekuk x;k g lcl T;knk fDuok lkmFk vefjdk e mxk;k tkrk g bld vfrfjDr bldk mRiknu dkykjkMk] dfyQkfu;k] phu] ;jki] Hkkjr rFkk dukMk e Hkh gkrk g yfdu vc bldk mRiknu fQuy.M] ckykfo;k] i: rFkk bDokMkj vkfn e gku yxk gA fDuok dh [krh mRrj Hkkjr fgeky; d vkl&ikl] ioh mRrj in"k rFkk cUny[k.M d fdlkuk d fy; ojnku lkfcr gk ldrh gA fDuok ,d de ikuh e gku okyh Qly gA bld de ikuh e mxu XyVueDr rFkk lk;klr ek=k e ik'kd inkFkk dh mifLFkfr d dkj.k bldk lij QM (Super food) d :Ik e tkuk tkrk gA Hkkjr e bldh [krh d ilkj dh dkQh lEHkkouk; gA

fDuok dk cht

fDuok dk ik/kk

fDuok dk cht dkQh ik'kd gkrk gA ble vU; vuktk dh vi{kk mtk] ikVhu] [kfut] olh; inkFk] foVkfeu] vko";d vehuk vEy vf/kd ek=k e ik; tkr gA bldk ik/kk eyr% gj jx dk gkrk g rFkk bldk cht igy gj jx dk fQj cxuh vkj bld ckn ihyk] yky gk tkrk gA bld cht dk vkdkj piVk v.Mkdkj gkrk gA fDuok d cht e fuEu egRoi.k ik'kd inkFk ik; tkr g %&

vehuk vEyk dh ek=k %&

vehuk vEy dk uke	ek=k (mg/g Protein)	vehuk vEy dk uke	ek=k (mg/g Protein)
Arginine	77.3	Methionine	21.80
Aspartic acid	80.30	Phenylalanine	42.00
Cysteine	14.40	Serine	40.20
Glysine	49.20	Threonine	29.80
Glutamic acid	132.10	Tryptophan	11.80
Histidine	28.80	Tyrosine	18.90
Isoleucine	35.70	Valine	42.10
Arginine	77.3	Leucine	59.50
Aspartic acid	80.30	Lysine	54.20

[kfut dh ek=k %&

[kfut dk uke	ek=k (mg/100 g dry wt.)
Calcium	148.7
Iron	13.2
Magnesium	249.6
Phosphorous	383.7
Potassium	926.7
Zinc	4.4

foVkfeu dh ek=k %&

foVkfeu dk uke	ek=k (mg/100g dry wt.)
Thiamine	0.2-0.4
Riboflavin	0.2-0.3
Folic acid	0.0781
Niacin	0.5-0.7

olh; inkFk e olk vEy dh ek=k %&

olh; vEy dk uke	ek=k (%)
Myristic acid [C14:0]	0.1-2.4
Palmitic acid [C16:0]	9.2-11.1
Stearic acid [C18:0]	0.6-1.1
Myristoleic acid [C14:1]	1.00
Palmitoleic acid [C16:1]	0.2-1.2
Oleic acid [C18:1]	22.8-29.5
Linoleic acid [C18:2 (n-6)]	48.1-52.3
Linolenic acid [C18:3 (n-3)]	4.6-8.0

fDuok e olh; inkFk lk;kIr ek=k e ik; tkr g vkj bld i;kx l lk;kIr ek=k e mtk dk mRiknu gkrk gA fDuok e olk e ?kyu"khy foVkfeu&b mifLFkr gkrh g tk fd ,d ikdfrd ,.VhvkDlhMUV d :Ik e dk; djrh gA ble jlnkj inkFk 13-6 l 16-00 xke@100 xke "k'dHkkj rd ik; tkr gA ble jlnkj inkFk mifLFkr gku d dkj.k ikpd"kfDr c<rh g vkj mnj jkxk d [krj dk de djrh gA ble mifLFkr ikVhu] olk] foVkfeUl] [kfut rFkk jlnkj inkFk e/keg] gn; jkxk ,o mnj jkxk d [krj dk de djr g rFkk ekVki dk de dju e lgk;d gA l;Dr jk'Vl?k u o'k 2013 dk vUrjk'Vh; fduok c'k ?kkf'kr fd;k gA bld cht dk idkdj] Hkkh] lEi.k cht rFkk fMgYM cht d :Ik e i;kx dj ldr g bld fofHkUu idkj d C;tu tl cM] fcLdV] ikLrk] i; inkFk] cPpk dk [kkuk] MkbV llyheUV vkfn cuk; tkr gA fDuok dk gjh [kkn] Ik"kvk d pkj d :Ik e Hkh i;kx fd;k tkrk gA

fDuok len ry l 4000 ehVj dh mpkb rd mxk;k tk ldrk gA bldh Qly dk de mojrk okyh enkvk e Hkh mxk;k tk ldrk g yfdu tknkrj cyb] nkeV enk e vPNh rjg l mxk;k tk ldrk g ;g mnklhu enkvk ,o ih,p 5-5 l 8-5 rd dh enkvk e vklkuh l mxk;k tk ldrk gA bld fy; vkn"k rkieku 18ºC l 20ºC rd ekuk tkrk gA fDuok dk cku l igy [kr e ,d l nk ckj xgjh trkb dh tkrh g ftll [kjirokj u'V gk tk; vkj feVVh vPNh rjg l HkjHkjh gk tk; vFkkr enk e Ik;kIr ek=k e ok; igp tk;A bldh cvkb e/; eb e gkrh gA ,d gDV;j [kr e 15 l 20 fdykxke cht dh vko";drk gkrh gA mfpr vknrk gku ij ;g 24 ?k.V e vdfjr gk tkrk gA bld cht dh cvkb enk e 1 l 3 l0eh0 dh xgjkb rd dh tkrh gA fduok e ruk Nnd] ekg rFkk dod jkx vkfn yxr gA Qly idu ij Ik"kvk o if{k;k l j{kk djuh pkfg,A fDuok dk mRiknu 500 fd0xk0 l 1500 fd0xk0 ifr gDV;j rd vukt ink gkrk gA

Ek : e?k
fdlku b & if=dk
www.marumegh.com ij vkuykbu miyC/k
©2016 marumegh
ISSN:2456-2904

Pkkj d :Ik e ,tkyk dk c<rk egRo&,d nf"V

mekukFk 'kDyk[1]*et yrk feJk[2] ,o fot; y{eh ;kno[3]

[1]Lkgk;d Ák/;kid]"kL; foKku foHkkx] —f'k egkfo|ky;] e.Mkj] tk/kij
[2]Ikh-,p-Mh] lh-,l-d-,p-ih-d-oh-] ikyeij ¼fgekpy Án"k½
[3]Nk=k] ,e-,l-lh- ¼"kL; foKku foHkkx½] —f'k egkfo|ky;] e.Mkj] tk/kij
*b&ey% umanaths7@gmail.com

,tkyk VfjMkQkbVk leg dk ,d tyh; ik/kk ¼Qu½ g] tk ikuh dh lrg ij rjrk jgrk gA NkV&NkV rkykck e ikuh dh lrg ij fn[kkb nrk gA ,tkyk d ifRr;k dh dfoVh e *,ukfcuk, tkfyuked* l{etho tk uhy gfjr "koky gkrk g og l;d idk'k e ok;e.Myh; ukbVktu dk fLFkjhdj.k djrk g vkj ;g Qly dk ukbVktu inku djrk gA Hkkjr e e[; :Ik l ,tkyk dh tkfr *,tkyk fiUukVk* ikb tkrh gA ;g xeh lgu dju okyh fdLe gA Qu d fupy Hkkx e lkbukoDVhfj;k ik;k tkrk g tk ok;e.Myh; ukbVktu dk ifjofrr djrk gA ;g ifr gDV;j 20&25 fdykxke ukbVktu dk fLFkjhdj.k djrk gA bldh fo'k"krk ;g g fd ;g vudy okrkoj.k feyu ij 5 fnuk e gh nkxuk gk tkrk gA ,tkyk e 3-5 ifr'kr ukbVktu rFkk db vU; dkcfud inkFk gkr g tk Hkfe dh mojk 'kfDr c<kr grFkk lkFk gh lkFk ukbVktu dh ifr djr g, moojdk d n'ÁHkkok dk Hkh nj djrk gAbldk mi;kx gjh [kkn d :Ik e /kku e fd;k tkrk gA ,tkyk dk ikuh l Hkj g, [kr e nk l rhu llrkg d fy, mxk;k tkrk g ikuh dk ckgj fudky fn;k tkrk g vkj ,tkyk dk /kku dh jkikb l io [kr e feyk fn;k tkrk g ;k /kku dh jkikb d ,d llrkg ckn ikuh l Hkj g, [kr e 04&05 fDoVy ,tkyk fNMd fn;k tkrk g tk [kkn dk dke djrk gA

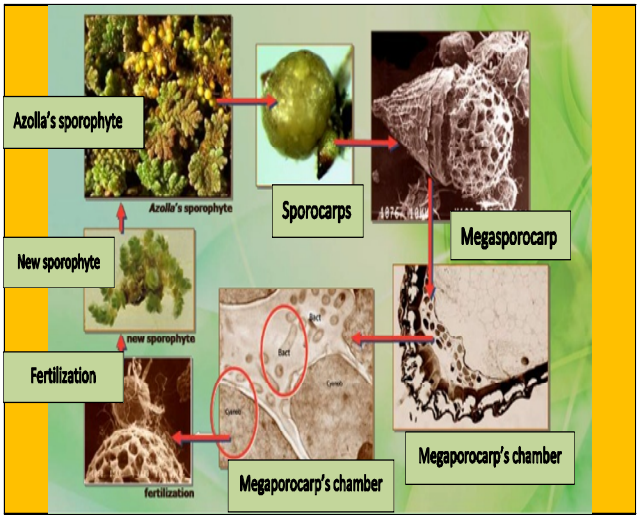

fp=k ,tkyk dk thou pØ

Hkkjr fo"o e lk"kikyu o nX/k mRiknu e vx.kh n"k gA o'k 2016&17 d nkjkuHkkjr e 164 fefy;u Vu nX/k dk mRiknu gvk] tk 2013&14 dh ryuk e 27fefy;u Vu T;knk gA ogh nX/k dh miyC/krk e Hkh vÁR;kf"kr of) n[ku dk feyhA 2013&14 enX/k dh miyC/krk 307 xke Fkh] tk 2016&17 e 351 xke Áfr 0;fDr Áfr fnu gk x;hA c<r nX/k dk mRiknu dk /;ku e j[kr g, lk"kvk d gj pkj d mRiknu c<ku d lkFk&lkFk ikf"Vd vkgkj d ckj e Hkh lkpuk gkxkA ftll lk"kvk dk gjk pkjk Á;klr ek=k e fey ld o mudh nfudikf"Vdrk lEc/kh t:jr Hkh ijk gk ldA D;kfd vkt d nkj e fdlku gj pkj rFkk ikf"Vd vkgkj dh deh gku d dkj.k ckrkj l egx o x.koŸkk foghu i'kvkgkj ydj lk'kvk dk f[kyk;k tk jgk g ;gh otg g ftld dkj.k nX/k mRiknu ykxr e of) vkj i'kikyu e ?kkVk gkrk tk jgk g bl leL;k d fy, ,tkyk mRiknu lk'kikydk d fy, ojnku lkfcr gkxkA bl ?kj&vkxu e mxkdj Hkh lky Hkj gjk pkjk mRikfnr dj ldr gA ;g lk'kvkgkj d fodYi dh [kkt e lnkcgkj pkj d :i e mi;kxh lkfcr gkxkA ,tkyk dk gjk lkuk vFkok lk'kvk d fy,

Pouik'k dh lKk nh xb gA ÁkVhu d vykok ble foVkfeu ¼foVkfeu ,] ch 12½] chVk djkVhu] dfY"k;e] QkLQkjl] ikVf"k;e] ykgk] rkck o efXuf"k;e Hkh ik;k tkrk g tk bl vkn"k pkjk cukrk g ¼Rkkfydk 1½A

lk'kikyu 0;olk; dk vf/kd ykHkdkjh cuku d fy, ,tkyk dk lk'kvk d lrfyr vkgkj e gj pkj d :Ik e f[kyk;k tk ldrk gA ,tkyk l lk'kvk d nX/k mRiknu e Hkh of) gkrh gA l[k ,tkyk dk ikYVh QhM ¼efx;k d [kku e½ d :Ik e bLreky fd;k tk ldrk gA gjk ,tkyk eNyh d fy, Hkh ,d vPNk vkgkj gA ,tkyk dk i;kx tfod [kkn] ePNj l cpku okyh Øhe] lykn r;kj dju vkj ck;k LDotj d :Ik e bLreky fd;k tkrk gA ;g lHkh Hkkjh /kkrvk dk gVk nrk gA

fp=¼ fofHkUu lk'kvk dk ,tkyk ,d ojnku

Rkkfydk 1¼ ,tkyk dk jklk;fud l?kVu

Ø-l	rRo	Ekk=k ¼"k"d Hkkj d vuqkj½
1-	ÁkVhu ¼%½	21.4-30.0
2-	j'kk ¼%½	12.7-15.5
3-	bFkj lr ¼%½	2.5-3.5
4-	jk[k ¼%½	14.5-16.2
5-	,u-,Q-b ¼ukbVkt u eDr lr½ ¼%½	42.8-47.0
6-	dfY'k;e¼%½	0.95-1.16
7-	ikVf'k;e¼%½	1.0-1.29
8-	eXuf'k;e¼%½	1.25-3.80
vfr l{e rRo ¼ih-ih-,e½		
9-	eXuht	89-174
10-	ftd	87-125
11-	Rkkck	16-39
12-	ykgk	400-755
		¼L=krh [khph ,V-vky-] 2018½

,tkyk l ykHkh&

[kjhQ vkj jch nkuk eklek e gjh [kkn d :Ik e i;kx fd;k tkrk gA

1. ;g ifr gDV;j 20&25 fdykxke ok;e.Myh; ukbVkt u dk fLFkjhdj.k djrk gA
2. ;g ok;e.Myh; dkcu Mkb vkDlkbM vkj ukbVkt u dk Øe'k dkckgkbMM vkj vekfu;k e cnyrk g vkj vi?kVu d ckn Qly dk ukbVkt u miyC/k djokrk g vkj feVVh e tfod dkcfud inkFk miyC/k djokrk gA
3. vkDlhtfud idk'k l'y"k.k e mRiUu vkDlhtu Qlyk dh tM i.kyh vkj feVVh e miyC/k vU; l{e thok d 'olu e enn djrk gA
4. ;g ftd] vk;ju vkj exuht dk ifjofrr dj /kku dk miyC/k djokrk gA
5. /kku d [kr e ;g NkVh ekVh [kjirokj tl pkjk] fuVyk dk Hkh nck nrk gA
6. ;g xkFk jxyVj vkj foVkfeu NkMrk g tk /kku d ik/kk d fodkl e lgk;d gkr gA

7. ,tkyk ukbVªkstu mojdk d fodYi dk dke djrk g vkj Qly dh mit ,o x.koÙkk dk c<krk gA
8. fjtdk ,o ldj ufi;j dh ryuk e 4 l 5 xuk mPp x.kork ;Dr ikVhu ikIr gkrh gA ;fn to Hkkj mRiknu d :i e ryuk dj rk fjtdk ,o ldj ufi;j l 4 l 10 xuk rd vf/kd mRiknu nrk gA
9. ;g jklk;fud mojdk d mi;kx dh {kerk dk c<krk gA
10. ;g /kku d flfpr [kr e ok"ihdj.k dh nj dk de djrk gA
11. ;g tkuojk d fy, ifrtfod dk dk; djrk gA

Rkkfydk 2½ ,tkyk vkj vU; pkj d ck;kekl vkj ikVhu dh ryuk

Ø-l-	Qly	ck;kekl dk okf"kd mRiknu ¼fefVd Vu/ gDV;j½	'k"d inkFk ¼fefVd Vu/ gDV;j½	ikVhu (%)
1	gkbfcM ufi;j	250	50	4-0
2	dkykdVVk ?kkl	40	8	0-8
3	fjtdk	80	16	3-4
4	Ykkfc;k	35	7	1-4
5	lckcy	80	16	3-3
6	Tokj	40	3-3	0-6
7	,tkyk	1000	80	24-0

¼L=kr½http://www.agrifarming.in/azolla-cultivation-information½

,tkyk mRiknu dh fof/k&

1. ,tkyk dk mRiknu dju gr 2 ehVj yEc] 1 ehVj pkM vkj 0-5 ehVj xgj lheV Ødh V d Vd dh vko';drk gkrh g vFkok 2 ehVj xuk 2 ehVj vkdkj dh ,d ;ch LFkk;hdr flYikfyu 'khV dk i;kx fd;k tkrk gA
2. Vd dk fuek.k vPNh rjg l fd;k tkuk pkfg, rkfd mlels ikuh Hkjk jgA
3. lcl igy Vd e leku :i l feVVh Mkyuh pkfg,A feVVh dh ijr yxHkx 10 leh- xgjh gkuh pkfg,A
4. Vd e xk; dk xkcj 1 l 1-5 fdykifr ox ehVj dh nj l Mkyuk pkfg,A ifr Vd 2 l 3 fdyk xk; dk xkcj 1 Vd e gj g¶r ifr ox ehVj 5xke dh nj l flxy lij QkLQV Mkyuk pkfg,A ¼ifr Vd 10 xke½ Vd e feVVh l 10 l 15 leh- dh Åpkb rd ikuh Mkyuk pkfg,A
5. dhVk d lØe.k l cpko gr 2 xke dkck¶;jku feykuk pkfg, ikuh dh lrg ij fufer Qke vkj Lde dh ijr dk gVk nuk pkfg,A
6. ,tkyk D;kjh e feVVh rFkk ikuh d feyku d ckn yxHkx 0-5 l 1 fdyk 'k) ,tkyk dYpj ikuh ij ,d leku Qyk nuk pkfg,A feyku d rjUr ckn ,tkyk d ik/kk dk lh/kk dju d fy, rktk ikuh fNMdk tkuk pkfg,A
7. ikuh dh lrg ij ,tkyk dh ijr cuu e nk llrkg dk le; yxrk gA Vd e ikuh dk Lrj fo'k"kdj xfe;k e cuk; j[kuk pkfg,A
8. ukbVªkstu dh ek=k c<ku d fy, 30 fnuk e ,d ckj yxHkx 5 fdyk D;kjh dh feVVh dk ub feVVh l cnyuh pkfg,A
9. ifr Ng ehuk e D;kjh dk lkQ djuk pkfg,] ikuh rFkk feVVh dk cnyk tkuk pkfg, ,o u;k ,tkyk Mkyuk pkfg,A

10. dhVk rFkk chekfj;k l lØfer gku ij ,tkyk d 'k) dYpj l ,d u;h D;kjh r;kj djuh pkfg,A
11. T;knk idk'k dk jkdu d fy, Vd ij ?kkl&Ql d iRrk dh 'kM] Nlij cuk nuk pkfg,A lfn;k e ,tkyk ij vkl Hkh ugh terh gA

dVkb ,o mi;kx

fp=½ ,tkyk dh [krh

½L=kr½ http://www.thehansindia.com½

lkr fnu ckn gj fnu 1-5 fdyk ,tkyk fudky ldr gA Nyuh dh lgk;rk l ,tkyk dk vyx djd lykfLVd dh V e ,df=r djuk pkfg,A ,tkyk l xkcj dh x/k dk nj dju d fy, bl /kkuk vko';d gA ,tkyk dk lk'kvk dk f[kykuk l io ikuh e /kkuk pkfg,A /kku e i;Dr ikuh dk iM&ik/kk e Mky nuk pkfg,A ,tkyk vkj lk'k vkgkj dk 1½1 vuikr e feykdj lk'kvk dk f[kykuk pkfg,A

mi;kfxrk d vk/kkj ij ,tkyk mRiknu dh vU; fof/k;k½&

1. /kku d [kr e bldk i;kx gjh [kkn d :i e fd;k tkrk gA bl /kku d [kr e 10 ifr'kr {k= e mxk;k tkrk gA [kr e ikuh Hkj fn;k tkrk gA ,tkyk dk [kr e fNMd fn;k tkrk g vkj ifr ,dM 45 fdyk flxy lij QkLQV Mkyk tkrk gA /kku d [kr e of) djd ukbVktu miyC/k djokrk gA
2. eNyh vkgkj d fy, ,tkyk rkykc e mxk;k tkrk gA rkykc dk ,d fgLlk bld fy, igy fu/kkfjr fd;k tkrk gA ?kkl l cuh jLlh l ?kjk cuk;k tkrk g vkj mle ,tkyk mxk;k tkrk gA ,tkyk dh vPNh of) gku d ckn jLlh gVkdj bl rkykc e NkM fn;k tkrk gA
3. ,tkyk dk ?kj d ihN ½cd;kM½ e Hkh mxk;k tk ldrk g bld fy, igy ml {k= dk lery fd;k tkrk g vkj pkjk vkj bV [kMh djd nhokj cukb tkrh gA D;kjh d pkjk vkj FkkMh Åph nhokj cukuh pkfg, rkfd mle ikuh Bgj ldA D;kjh e ,d ikfyFkhu 'khV bl rjg l fcNk nh tkrh g rkfd mle 10 leh- ikuh dk Lrj cuk jgA pkj dh vko';drk d vk/kkj ij D;kjh dh yEckb vyx&vyx j[kh tkrh gA yxHkx 8 ox ehVj {k= dh nk D;kjh ftudh yEckb 2-5 ehVj gk] nk xk; d fy, gj pkj dh 50 ifr'kr t:jr iwjh gk ldrh gA D;kjh dh pkMkb 1-5 ehVj j[kuh pkfg,A

,tkyk mRiknu e /;ku j[ku ;kX; ckr½&

1. ek/;e dk ih-,p- 5-5 l 7 d chp gkuk pkfg,A
2. vPNh of) d fy, rkieku yxHkx 30&35 fMxh lfYl;l rkieku gkuk pkfg,A
3. BM {k=k e BM ekle d iHkko dk de dju d fy, D;kjh dk lykfLVd dh 'khV l <d nuk pkfg,A
4. dhVk d lde.k l eDr gkuk pkfg,A
5. lh/kh vkj i;klr ljt dh jk'kuh oky LFkku dk ikFkfedrk nh tkuh pkfg,A Nk;k okyh txg e inkokj de gkrh gA
6. mi;Dr ik"kd rRo tl xkcj dk /kky]l{e ik"kd rRo flxy lij QkLQV Mkyr jguk pkfg,A
7. ,tkyk l gVk, x, xk; d xkcj vkj [kfut feJ.k dh ifr d fy, ,tkyk D;kjh e de l de lkr fnuk e ,d ckj xk; dk xkcj] [kfut feJ.k Mkyuk pkfg,A

Ek : e?k
fdlku b & if=dk
www.marumegh.com ij vkuykbu miyC/k
©2016 marumegh
ISSN:2456-2904

cxu d ie[k dhV rFkk mudh jkdFkke

'ork iVy
dhV foKku foHkkx] xkfcUn cYyHk ir df"k ,o ik|kfxdh fo'ofo|ky;] iruxj]
mRrjk[k.M&263145
b&ey % patel19.rk@gmail.com

cxu dh [krh mRrj Hkkjr e e[;r% nk _rvk] xh'e dkyhu rFkk [kjhQ e gkrh gA cxu d ik/kk dk dhVk }kjk gkfu ik/kkoLFkk l vkjEHk gkdj Qy yxu rd gkrh gA e[; :i l c/kd dhV] ifRr;k dk dkVdj vFkok [kjp dj [kku oky vFkok jl plu oky dhVk l gkfu gkrh gA

c/kd dhV% cxu e nk idkj d c/kd dhV yxr gA ,d dhV e[; :i l e[; ru dk c/k dj [kkrk g rFkk dkey ijkgk rFkk Qyk d Hkhrj jg dj [kkrk gA

ijkg rFkk Qy c/kd dhV % ;g cxu dk vR;Ur gh gkfudkjd dhV gA

igpku % bl dhV d thou e pkj voLFkk; v.Mk] lMh] l;ik rFkk ik< irxk gkrh gA gkfu doy lMh }kjk gh gkrh gA i.k fodflr lMh >jhnkj] yxHkx 25 fe0 eh0 yEch rFkk gYdh xykch jx dh gkrh gA

gkfu rFkk y{k.k %

bl dhV dk idki Qy yxu l io rFkk Qy yxu ij nkuk voLFkkvk e gkrk gA vkfFkd :i l Qy yxu dh voLFkk e bldk idki vf/kd gkfudkjd gA
v.Mk d QVko d i"pkr uotkr lfM;k FkkM le; d fy, ifRr;k vkfn ij jgu d i"pkr dkey ijkgk e fNn djd ?kl tkrh g vkj ijkgk d Hkhrj jgdj ljx cukrh gA bld dkj.k ijkgk d "kh'kk rd Hkktu u igp iku d dkj.k ijkg ej>k dj yVd tkr g] bll ik/kk dh of} ij foijhr iHkko iMrk gA xflr Qy V< e< gk tkr g] vR;kf/kd NkV Qyk dk fodkl :d tkrk g rFkk Qyk e lMu Hkh vkjEHk gk tkrh gA

jkdFkke %

;g dhV cgr vYidky d fy, ik/kk dh lrg ij jgrk g vkj lMh ik;% leLr thou ik/kk d fofHkUu Hkkxk d Hkhrj jgdj 0;rhr djrh g] doy dhVukf"k;k d i;kx }kjk ykHkdkjh fu;=.k lEHko ugh gA vr% ,dhdr fu;=.k vR;Ur vko";d gA

1- loiFke ,lh itkfr;k dk yxkuk pkfg, ftue bl dhV dk idki de gkrk gkA ilk ifiy DyLVj] ,0 vkj0 ;0&2lh0] ,l0 ,e0 17&4] iUr lekV rFkk itkc cjlkrh yEc Qyk okyh ,o ilk ifiy jkm.M] xky Qyk okyh itkfr;k ij bl dhV dk idki de gkrk gA
2- xflr ijkgk dh lMh lfgr rkM dj rFkk xflr Qyk dk ,df=r djd u'Vdj nuk pkfg,A xflr Qyk dk ik/kk e ugh NkMuk pkfg,A
3- Qly ijh gk tku d i"pkr ik/kk dk ,df=r djd u'V dj nuk pkfg,A

ifRr;k ij yxu oky dhV%

fcnhnkj vFkok ,ihyDuk chfVy %

ifRr;k ij yxu oky dhVk e ;g dhV ie[k gA ik< chfVy xkykdkj] ihy Hkj jx dk] ekV i[kk okyk gkrk gA bldh fofHkUu tkfr;k ij i[kk ij dkyh fcUnh;k dh l[;k fHkUu&fHkUu gkrh gA lkykulh dy d ik/kk ij ik; tku okyh tkfr d "kjhj ij 28 fcfn;k ikb tkrh gA v.M d ckn dh voLFkk Hkxd ihy jx d rFkk "kjhj d i'B Hkkx ij vudk "kyk l <d jgr gA

gkfu rFkk y{k.k %

bld xc rFkk chVhy nkuk gh ifRr;k dh Ropk dk [kjp dj [kkr gA budh fo"k'krk ;g g fd ;g ifRr;k e fNn ugh djr A [kpk gvk Hkkx tkyhnkj gk tkrk g ftle doy f"kjk, gh fn[kkb nrh gA NkV ik/kk ij ifRr;k dk vkdkj NkVk rFkk l[;k de gku d dkj.k gkfu gkrh gA

jkdFkke %

1- ifRr;k dh fupyh lrg ij ihy jx d v.Mk d >.Mk dk nck dj dpy nuk pkfg,A
2- ik/kk ij dkckfjy vFkok eykfFk;ku /ky dk cjdko 20&25 fd0 xk0 ifr g0 dh nj l dju l ykHk gkrk gA
3- dhVukf"k;k d rhu l pkj fNMdko dju l vPNk fu;=.k ikIr gkrk gA iFke fNMdko jkikb d 30&40 fnu i"pkr djuk pkfg,A fDouyQkl 25 b0lh0 2 yhVj ek=k ifr g0 dh nj l vko";drkulkj ?kky cukdj fNMdko djuk pkfg,A vxy rhu fNMdko 15&20 fnu d vUrjky ij dju pkfg,A bu voLFkkvk dkckfjy 50 ifr"kr ?kyu"khy ikmMj dh 1-5 fd0xk0 vFkok QuoyjV 20 b0 lh0 dh 300 fe0 fy0 vFkok lk;iefFku 25 b0 lh0 dh 200 fe0 fy0 ek=k ifr g0 dh nj l fNMduh pkfg,A

ruk c/kd %

bl dhV dk idki ik;% de gkrk gA ;g dhV cM ik/kk dk gkfu igpkrk gA

gkfu rFkk y{k.k %

dhV dh lMh gh gkfu igpkrh gA lMh e[; "kk[kkvk vFkok ruk e io"k djd Hkhrj gh Hkhrj jg dj ljx cukrh gA tc ;g fdlh e[; "kk[kk e io"k djrh g rk [kkrh gb e[; ru e ljx cukr g, ;g uhp dh vkj c<rh g ifj.kkeLo:i doy xflr "kk[kk gh l[k dj u'V gk tkrh gA e[; ru e ljx cukr g, ;g uhp dh vkj c<rh g vkj feVVh dh lrg l FkkMk Åij ru e fNn djrh gA bl voLFkk e ijk ik/kk l[k dj ej tkrk gA ru d ikl feVVh ij cjknk fn[kkb nrk gA ru e ;g fNn ik< irx d ljx l ckgj fudyu d fy, gkrk gA

jkdFkke %

1- xflr ik/kk dk lfM;k lfgr u'V dj nuk pkfg,A
2- cxu dh Qly mu {k=k e ugh yuh pkfg, tgk bl dhV dk idki ik;% gkrk jgrk gA
3- ijkg rFkk Qy c/kd dhV d fu;=.k d fy, i;kx fd, x, dhVukf"k;k d fNMdko bl dhV d fy, Hkh ykHkdkjh gA

iRrhyiVd dhV %

bl dhV dk idki o'kk dkyhu Qly e vf/kd gkrk gA bldh lfM;k cxuh Hkj jx dh gkrh g rFkk mud "kjhj ij jk, ik, tkr gA bu jkxk d e/; ihy jx d /kCc gkr gA

gkfu rFkk y{k.k %

eknk irxk ifRr;k ij v.M nrh gA v.Mk d QVko d i"pkr uotkr lfM;k ifRr;k dk [kjp dj [kk tkrh gA bld i"pkr cgr NkV ik/kk dh NkVh iRrh d fdukjk dk vkil e tkM dj Hkhrj gh

Hkhrj [kkrh gA cMh ifRr;k dk fdukj l ekM dj j"keh /kkxk l tkM nrh g rFkk mud Hkhrj jgdj ifRr;k dk [kjp dj [kkrh gA ,lh ifRr;k l[k dj fxj tkrh gA bUgh eMh gb ifRr;k e ;g l;ikoLFkk e ifjofrr gk tkrh gA

jkdFkke %

1- NkV ik/kk dh eMh gb ifRr;k rFkk cM ik/kk e eMh ifRr;k dk rkM dj u'V dj nu l mud Hkhrj lMh vFkok l;ik Hkh u'V gk tkr gA
2- ;fn idki vf/kd gk rk dkckfjy 50 ifr"kr ?kyu"khy ikmMj dk vko";drkulkj ikuh e ?kky cuk dj fNMdko djuk pkfg,A

jl plu oky dhV %

ekg % ekg dh nk tkfr;k ik;% cxu dk gkfu igpkrh gA ;g dkey "kjhj oky ihy gj vFkok dky jx d dhV gA ik;% i[kghu gkr g rFkk ifRr;k dh fupyh lrg legk e jgr gA

gkfu %

f"k"k rFkk ik< ekg ifRr;k dh fupyh lrg l jl plr jgr gA vf/kd jl plu d dkj.k ifRr;k ihyh iMu yxrh g rFkk /khj /khj l[ku yxrh gA ekg dk "kgn fpifpik inkFk mRlftr djrk g vkj ml ij dkyh QQnh dh ijr iM tkrh gA bll ifRr;k }kjk Hkktu cuku dh ifd;k e ck/kk igpu d dkj.k ik/k detkj gk tkr gA

jkdFkke %

1- Qy yxu l io dh voLFkk e vkDlhfMfeVku feFkkby 25 b0 lh0 600&800 fe0 fy0 nck yxHkx 500&600 fyVj ikuh e ?kky cukdj fNMdko dju l dhV dk fu;=.k gk tkrk gA
2- ;fn ekg dk idki Qy yxu dh voLFkk e gk rk eykfFk;ku 50 b0 lh0 1 fyVj 500 &600 fyVj ikuh e ?kky cuk dj ifRr;k dh Åijh rFkk fupyh lrg ij fNMdko djuk pkfg,A

Ykky v'Vinh %

;g dhV ox dk ugh gA bldh pkj tkMh Vkx gkrh g rFkk "kjhj nk Hkkxk e foHkDr jgrk gA bl yky edMh ekbV vFkok nk /kCck okyh ekbV Hkh dgr gA budk vkdkj l{e gkrk g rFkk "kjhj pedhy yky jx dk gkrk gA

gkfu rFkk y{k.k %

f"k"k rFkk ik< ekbV ifRr;k dh fupyh lrg dh dkf"kdkvk l jl plr gA ;g ik;% ,d iry tky d vUnj jg dj dkf"kdkvk l jl plr gA iRrh dh Åijh lrg ij lb dh ukd d leku NkV NkV ihy /kCc fn[kkb nr gA vf/kd idki dh voLFkk e ifRr;k ihyh iM tkrh gA bldk ik/kk dh c<okj rFkk Qyk dh mit ij foijhr iHkko iMrk gA

jkdFkke %

?kyu"khy x/kd 3 xke ifr fyVj ikuh dh nj l ?kky cukdj fNMdko dju l bldk fu;=.k gk tkrk gA vf/kd xeh d fnuk e x/kd dk fNMdko ugh djuk pkfg,A ,lh voLFkk e eykfFk;ku 50 b0 lh0 500&600 fe0 fy0 nok 600 fyVj ikuh e ?kky cuk dj fNMdko djuk pkfg,A

lQn eD[kh rFkk i.k Qndk %

;g nkuk dhV cg Hk{kh; g rFkk cxu d vfrfjDr ;g fHk.Mh] fep] VekVj] vky] Qpchu rFkk dikl vkfn dk Hkh gkfu igpkrh gA nkuk dhVk dh f"k"k rFkk ik< voLFkk, ifRr;k dk jl gkfu igpkrh gA vf/kd idki gku ij ik/kk dh of) ij foijhr iHkko iMrk gA

lko/kkfu;k¡

lfCt;k e dhV fu;=.k d fy, dhVukf"k;k d i;kx e fo"k'k lko/kkuh dh vko";drk gA yEc le; rd fo'kyk iHkko NkMu oky dhVukf"k;k dk i;kx ik/kk dh NkVh voLFkk e gh djuk pkfg,A Qy vku d i"pkr de le; rd fo'kyk iHkko j[ku oky dhVukf"k;k dk idki djuk pkfg,A dhVuk"kh d i;kx rFkk Qyk dh rMkb e vuekfnr ifr{kk dky vFkok vUrjky dk ikyu djuk vko";d gA dhVuk"kh d i;kx l io rkMu ;kX; Qyk dk rkMu d i"pkr gh nok dk i;kx djuk pkfg,A o'kkdky e dhVuk"kh e ?kky e lUMkfoV ,d xke ifr fyVj ?kky dh nj l vPNh rjg l feyk yuk pkfg,A /ky dk fNMdko ikr% dky rFkk tc gok r t u gk] rHkh djuk pkfg,A tkMk e ifRr;k l vkl l[k tku d i"pkr gh fNMdko djuk pkfg,A